परिप्रेक्ष्य

शैक्षिक योजना और प्रशासन का सामाजिक-आर्थिक संदर्भ

वर्ष 14, अंक 3, दिसंबर 2007

राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय
17-बी, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली-110 016

500 प्रतियां

© राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय, 2007

इस पत्रिका का प्रकाशन प्रति वर्ष अप्रैल, अगस्त और दिसंबर माह में होता है। इसके समूल्य प्रकाशन की योजना विचाराधीन है, इसलिए इसकी प्रतियां चुनिंदा और इच्छुक व्यक्तियों तथा संस्थानों को नि:शुल्क भेजी जाती हैं। यह पत्रिका न्यूपा वेबसाइट - www.nuepa.org पर भी नि:शुल्क उपलब्ध है। इसे प्राप्त करने के इच्छुक व्यक्ति और संस्थान निम्निलिखित पते पर आवेदन करें :

अकादमिक संपादक

परिप्रेक्ष्य

राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय (न्यूपा)
17-बी, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली-110 016

राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय (न्यूपा) के लिए कुलसचिव, न्यूपा द्वारा प्रकाशित तथा बच्चन सिंह, बी-275, अवन्तिका, रोहिणी से. 1, नई दिल्ली द्वारा लेजर टाइपसैट होकर अनिल आफसेट एण्ड पैकेजिंग प्रा. लि. जवाहर नगर, नई दिल्ली, में न्यूपा के प्रकाशन एकक द्वारा मुद्रित।

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 14, अंक 3, दिसंबर 2007

विषय सूची

आलेख

मार्टिन कार्नाय
उच्च शिक्षा और आर्थिक विकास : भारत, चीन तथा 21वीं सदी 1

नरेश कुमार भोक्ता
शिक्षा का समाजशास्त्रीय विश्लेषण 39

सुजीत कुमार चौधरी
उच्च शिक्षा में महिलाओं की स्थिति एवं व्यावसायिक भेदभाव 51

मृदुला तिवारी
प्रारंभिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक 57

शोध टिप्पणी / संवाद

शिरीष बालिया
वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालयों के प्राचार्यों का नेतृत्व व्यवहार : 81
जोधपुर संभाग का अध्ययन

मयंक कुमार श्रीवास्तव
पाश्चात्य तथा भारतीय मनोविज्ञान में व्यक्तित्व की संकल्पना 95

राकेश भूषण गोदियाल और सुनीता गोदियाल
अध्यापक सशक्तिकरण में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी की भूमिका 109

चिंतक और चिंतन

निर्मला गुप्ता
प्राथमिक शिक्षा के विशेष संदर्भ में गिजु भाई के शैक्षिक विचारों की प्रासंगिकता 115

विमर्श

लालचंद राम
पाठ्यपुस्तक निर्माण प्रक्रिया के प्रभावकारी कारक और शिक्षाशास्त्रीय अपेक्षाएं : भाषा की पाठ्यपुस्तक के संदर्भ में विमर्श 125

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 14, अंक 3, दिसंबर 2007

उच्च शिक्षा तथा आर्थिक विकास
भारत, चीन तथा 21वीं सदी*

मार्टिन कार्नाय**

सारांश

इस आलेख में लेखक ने चार उभरती हुई अर्थव्यवस्थाओं, भारत, ब्राजील, रूस तथा चीन (इन्हें ब्रिक देशों के नाम से भी जाना जाता है) के आर्थिक विकास की संभावनाओं का आकलन किया है। इस आलेख में लेखक ने प्रमुख रूप से चीन तथा भारत पर बल दिया है तथा विकास प्रक्रिया के प्रमुख घटकों मानव पूंजी, विशेषतौर पर उच्च स्तर की मानवपूंजी पर भी बल दिया है। लेखक का मानना है कि चीन में वर्तमान सूचनात्मक अर्थव्यवस्था के मद्देनजर विश्वविद्यालय से शिक्षा प्राप्त श्रमिक, आर्थिक विकास के लिए महत्वपूर्ण होगा। (हालांकि इन सभी अर्थव्यवस्थाओं के पास कुछ न कुछ शक्तियां हैं (सस्ती मज़दूरी, विशाल आंतरिक बाजार, प्राकृतिक संसाधनों का भंडार), परंतु मध्यम और दीर्घावधि में सतत् विकास हेतु इनके विकल्प इस बात पर निर्भर करते हैं कि क्या यह देश आज और भविष्य की भूमंडलीय सूचनात्मक अर्थव्यवस्था के लिये उच्च स्तरीय मानव पूंजी का विकास तथा प्रयोग कर पायेंगे। इसका अर्थ यह कतई नहीं कि निम्न स्तर पर शिक्षा का कोई महत्व नहीं है। कम से कम इनमें से दो देशों ब्राजील और भारत में निम्न स्तर पर शिक्षा की गुणवत्ता (भारत में मात्रा

---

* प्रस्तुत पत्र फोर्ड सेंटर फार इंटरनेशनल डवलपमेंट में 31 मई – 3 जून, 2006 को पैन एशिया सम्मेलन: फोकस आन इकानमिक चैलेंजेज, में प्रस्तुत किया गया था। लेखक इस आलेख हेतु सहयोग के लिए प्रशांत लोयाल्का, तारा बेतली, अमिता चदगार शिक्षा संस्थान, स्टैनफोर्ड यूनिवर्सिटी का आभारी है। लेखक आलेख पर महत्वपूर्ण टिप्पणी के लिए सीमा जयचंद्रन को भी धन्यवाद ज्ञापित करता है।

** शिक्षा संस्थान, स्टैनफोर्ड यूनिवर्सिटी, 485 लासन माल, स्टैनफोर्ड, अमेरिका

सहित) एक गंभीर समस्या है। हालांकि, नवीन भूमंडलीय सूचनात्मक अर्थव्यवस्था के एक महत्वपूर्ण पहलू उच्च शिक्षा प्राप्त श्रमिकों की मात्रा और गुणवत्ता की महत्ता के मद्देनजर लेखक ने इन चार देशों की विश्वविद्यालयी व्यवस्था की तुलना और दिशा का आकलन किया है।

अर्थशास्त्रियों ने मुख्यत: शिक्षा के मात्रात्मक पक्ष का विश्लेषण किया है। श्रम शक्ति में स्नातकों की संख्या यह देखने के लिये कि क्या उच्चतम विकास के लिये अर्थव्यवस्था संसाधनों का आवंटन कर रही है। इस अर्थ, में रूस की स्थिति सबसे अच्छी है। रूस के पास वर्तमान तथा भविष्य की श्रम शक्ति के लिये उच्च शिक्षित लोगों का स्टॉक है, चीन अपनी उच्च शिक्षा को बहुत तीव्र गति से विस्तार दे रहा है, जबकि भारत में यह गति सबसे मंद है। हालांकि, कई विश्लेषणों का मानना है कि भारत के पास पर्याप्त संख्या में इंजीनियर्स तथा डाक्टर उपलब्ध हैं और सूचना आधारित एक विकसित सेवा अर्थव्यवस्था की ओर बढ़ते हुए उसे चीन से बढ़त हासिल है। परंतु (तिलक 2007) तथा अन्यों ने इंगित किया है कि अनुपात में भारत (यहीं ब्राजील भी जोड़ सकते हैं) के पास उच्च शिक्षित तकनीकी तथा सेवी कार्मिकों की संख्या बहुत ही कम हे। इस आलेख में इन सभी चार देशों में विश्वविद्यालयी शिक्षा की गुणवत्ता की समस्या को गंभीर मानते हुए इसका विश्लेषण किया है तथा कुलीन संस्थानों में पढ़ने वाले सीमित विश्वविद्यालयी छात्रों के संदर्भ में भी समस्याओं को उठाया है। हालांकि स्नातकों की संख्या महत्वपूर्ण है, परंतु अध्यापकों द्वारा छात्रों को प्रदत्त नवीनतम तथा नवाचार युक्त शिक्षा एवम् ऐसी शिक्षा को प्रोत्साहन देने वाले संस्थान महत्वपूर्ण हैं।

प्रस्तावना

अगले पचास वर्षों में ब्राजील, रूस, भारत तथा चीन (ब्रिक अर्थव्यवस्था) विश्व अर्थव्यवस्था में एक ताकत के रूप में उभरेंगे। वर्ष 2050 के लिये ब्रिक अर्थव्यवस्थाओं के संदर्भ में हमने नवीनतम जनांकीय प्रक्षेपण तथा पूंजी संग्रह एवं उत्पादन विकास का प्रयोग करते हुये सकल घरेलू उत्पादन वृद्धि, प्रति व्यक्ति आय तथा मुद्रा चलन का आकलन किया। इसके परिणाम चौंकाने वाले हैं। अगर इसी प्रकार रहा, तो अगले

चालीस वर्षों से कम समय में ब्रिक अर्थव्यवस्थाएं कुल मिलाकर यू.एस. डालर के संदर्भ में जी-6 अर्थव्यवस्थाओं से बढ़ी होंगी। 2025 तक यह जी-6 देशों की अर्थव्यवस्थाओं की लगभग आधी होंगी। वर्तमान में यह जी-6 देशों से 15 प्रतिशत कम है। वर्तमान जी-6 देशों में केवल संयुक्त राज्य अमेरिका एवम् जापान, वर्ष 2050 में यू.एस. डालर के संदर्भ में छह सबसे बड़ी अर्थव्यवस्थाओं में से होंगे।

विलसन तथा पुरुषोत्तमन (2003)

1960-70 के दशक में विकास अर्थशास्त्री विश्व के दो बहुसंख्यक देश भारत, चीन तथा ब्राजील (अमेरिकी महाद्वीप की सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था) के संदर्भ में भविष्य में आर्थिक विकास हेतु संभावनाओं की तुलना करते रहे। कम्युनिस्ट शासन के अंतर्गत चीन ने अपनी जनता के स्वास्थ्य और शिक्षा पर बहुत ध्यान दिया और जनसंख्या को बढ़ने से जबरन रोका। सोवियत मॉडल को अपनाते हुए इसने अपनी अर्थव्यवस्था को प्रतियोगिता से दूर रखते हुए भारी उद्योगों को तवज्ज़ों दी। सोवियत मॉडल का भारत पर भी प्रभाव पड़ा। भारत ने भी उच्च टैरिफ़ दरों के साथ अपनी अर्थव्यवस्था भारी उद्योगों पर आधारित की।

उन दिनों ब्राजील की अर्थव्यवस्था भी फल-फूल रही थी तथा विकास की संभावनाएं अच्छी थीं, हालांकि एक निरंकुश सैन्य शासन के साथ राजनैतिक समस्याएं भी जुड़ी थीं। भारत हरित क्रांति के क्षेत्र में आगे बढ़ रहा था। परन्तु भारत में एक बेहद संरक्षित, असक्षम औद्योगिक अर्थव्यवस्था थी तथा कम उत्पादन के साथ कृषि की बुनियादी फसलों का ही यहां उच्च अनुपात था। रूस तथा चीन ने आर्थिक संरचना के क्षेत्र में तथा अकालों से निपटने के लिये बहुत प्रगति कर ली थी। ये देश विचार की प्रमुखता तथा सैन्य शक्ति के बारे में सोचने से अधिक आर्थिक प्रगति के बारे में सोच रहे थे।

1980 के बाद विश्व में क्रांतिकारी परिवर्तन आया। हालांकि भारत और चीन 1980 के ऋण संकट से अछूते रहे, उन्होंने अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (आई.एम.एफ.) के दबाव से हटकर अपनी अर्थव्यवस्थाओं का सार्वजनीकरण प्रारंभ करना शुरु किया। ब्राजील तथा शेष लैटिन अमेरिका के देशों में अंतर्निहित वित्तीय सेवाओं की सख्त शर्तों तथा भारत में ऋण वसूली के अंतर्गत टैरिफ (कर-भार) को कम किया गया तथा विश्व

अर्थव्यवस्था की प्रतियोगिता में सम्मिलित होने का प्रयास किया गया। चौथी अर्थव्यवस्था, रूस में 1989 के बाद आमूल राजनैतिक तथा आर्थिक परिवर्तन आया और अर्थव्यवस्था में भारी गिरावट आई तथा कुछ निजी व्यक्तियों के हाथ में धन का स्थानान्तरण हुआ जो कि प्राकृतिक संसाधनों के दोहन तथा भूतपूर्व राज्य सरकार के उपक्रमों से जुड़े थे।

विश्व की अर्थव्यवस्था में इन परिवर्तनों को देखते हुए तथा ब्रिक देशों (ब्राजील, रूस, भारत, चीन) की भागीदारी को देखते हुए क्या गोल्डमैन सैक का उपरोक्त विश्लेषण अगले 45 वर्षों में ब्रिक देशों में भारी वृद्धि के संदर्भ में सही है?

इस आलेख में मानव पूंजी, विशेष तौर पर उच्च स्तर की मानव पूंजी के संदर्भ में मैनें विकास प्रक्रिया के महत्वपूर्ण घटकों के साथ चीन और भारत पर बल देते हुए ब्रिक देशों के आर्थिक विकास के बारे में विश्लेषण किया है। मेरा मानना है कि नयी सूचनात्मक अर्थव्यवस्था का विश्वविद्यालयी शिक्षित श्रमिक आर्थिक विकास के लिए महत्वपूर्ण रहेंगे। हालांकि इन सभी अर्थव्यवस्थाओं के पास दूसरी ताकत भी हैं। जैसे- सस्ती मज़दूरी, बड़ा आंतरिक बाजार, संसाधनों का वृहद भंडार। परन्तु मध्यम तथा दीर्घ स्तर पर उनकी क्षमता इस बात पर निर्भर करती है कि वह उच्च स्तर की मानव पूंजी का भूमंडलीय सूचना अर्थव्यवस्था के संदर्भ में आवश्यक ढांचागत सुविधाओं तथा नवाचारों हेतु कितना सफल उपयोग कर पाते हैं। इसका यह अर्थ यह नहीं है कि

चित्र-1: प्रक्षेपित स.घ.उ./प्रति व्यक्ति, ब्रिक, जापान तथा सं. राज्य अमेरीका, 2000-2050 (यू.एस. 2000$)

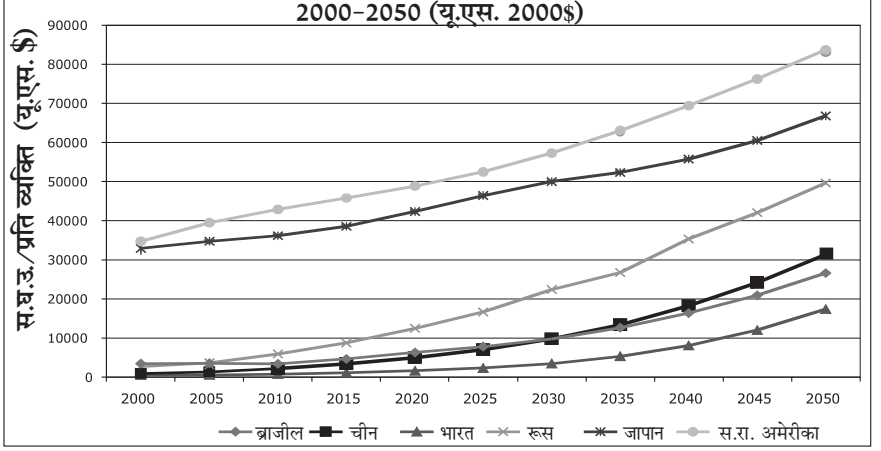

स्रोत: विलसन तथा पुरुषोतमन (2003)

निचले स्तर पर स्कूल की गुणवत्ता महत्वपूर्ण नहीं है। ब्राजील और भारत में निचले स्तर की शिक्षा की गुणवत्ता चिंताजनक है तथा भारत में तो इसका विस्तार भी चिंताजनक है। चूंकि नई भूमंडलीय ज्ञानमूलक अर्थव्यवस्था में उच्च शिक्षित कार्मिकों की गुणवत्ता तथा संख्या एक महत्वपूर्ण घटक है, इसलिये हम इन चार देशों की विश्वविद्यालयी व्यवस्था तथा इसकी दिशा पर चर्चा करेंगे[1]।

यहाँ आर्थिक विकास सभावनाओं का तुलनात्मक स्तर पर मूल्यांकन करना लाभदायक है। इन चारों समुदायों में बहुत भिन्नता है, इन चारों देशों में जनसंख्या अधिक है तथा इन्होंने पृथ्वी का काफी भाग घेरा हुआ है। विभिन्नताएं हमें विभिन्न तथ्यों का आकलन करने में मददगार होंगी तथा आर्थिक विकास प्रक्रिया में क्या बेहतर होगा, को समझने में मदद प्रदान करेंगी।

मैं इस आलेख में सबसे पहले यह चर्चा करना चाहुंगा कि इन देशों में उच्च शिक्षा नीतियां इतनी महत्वपूर्ण क्यों हैं। दूसरे भाग में तुलना की जायेगी कि इन चारों देशों में पिछले तीस वर्षों में निवेश पद्धति तथा उनकी वर्तमान उच्च शिक्षा नीति कैसी थी। तीसरे भाग में प्रत्येक देश में उच्च शिक्षा के सदंर्भ में आने वाली कठिनाइयों तथा भविष्य में उसके आर्थिक विकास के निहितार्थ चर्चा की गई है।

शिक्षा तथा आर्थिक विकास

व्यक्ति अधिक से अधिक पढ़ना-सीखना चाहता है; क्योंकि इससे वह बेहतर नौकरी प्राप्त कर अधिक कमा सकता है। कई लोगों के लिए यह सामाजिक गतिशीलता का स्रोत है। इसी प्रकार राज्य भी अपने निवासियों को अधिक शिक्षित बनाना चाहता है जिससे कि उनकी उत्पादकता और आर्थिक वृद्धि, अर्थव्यवस्था में गुणवत्तायुक्त नौकरियां तथा गरीबी की खाई कम हो।

शिक्षा अर्थव्यवस्था के पहले के अध्ययन दर्शाते हैं कि अधिक शिक्षा का महत्वपूर्ण प्रभाव यह होता है कि इससे श्रमिक की उत्पादन क्षमता बढ़ती है। चूंकि अधिक शिक्षा प्राप्त श्रमिक भाषा और गणित में अधिक दक्षता रखते हैं इसलिए उन्हें कठिन कार्य को

[1] इससे पहले नवीन अर्थव्यवस्था में उच्च शिक्षा के प्रभाव को जानने के लिये देखें, कैस्ट्ल, 1991 तथा हाल ही में विश्व बैंक ने भी इसे महत्वपूर्ण मानते हुये 'हायर एजुकेशन इन डवपलपिंग कंट्रीज : पेरील्स् एंड प्रामिस' प्रकाशित किया (विश्व बैंक 2000)

करने हेतु आसानी से समझाया जा सकता है तथा इसके अतिरिक्त उनके अंदर बेहतर कार्य-संस्कार होते हैं, समय की पहचान तथा आंतरिक मानदंडों की समझ होती है जो उन्हें अधिक विश्वसनीय बनाती है।

अधिक शिक्षित श्रमिक वाले देशों में प्रति श्रमिक उत्पादन अधिक होता है, परंतु इन देशों में प्रति श्रमिक भौतिक पूंजी भी अधिक होती है। शिक्षा किस प्रकार उत्पादन को बढ़ाती है, कितनी महत्वपूर्ण है, तथा किस प्रकार यह महत्वपूर्ण है, यह कुछ ऐसे प्रश्न हैं जिनका उत्तर अर्थशास्त्री भी निश्चित तौर पर नहीं दे सकते।

किस प्रकार की शिक्षा आर्थिक वृद्धि में सबसे अधिक योगदान देती है- सामान्य स्कूल, तकनीकी शिक्षा या सेवारत प्रशिक्षण या फिर शिक्षा का कौन सा स्तर वृद्धि में सबसे सहायक होता है- प्राथमिक, द्वित्तीयक या उच्च शिक्षा। इन सभी को लेकर भी मतभेद है। मेरा मानना है कि पिछले कुछ वर्षों में आर्थिक विकास में उच्च शिक्षा को महत्वपूर्ण माना जाने लगा है।

शिक्षा आर्थिक विकास में सहायक होती है। इसका महत्वपूर्ण उदाहरण यह है कि उच्च आर्थिक विकास दर वाले देशों में श्रमिकों ने सामान्य स्कूल के उच्च स्तर को प्राप्त किया है। शिक्षा और आर्थिक विकास के बीच इस प्रकार का समग्र अर्थशास्त्रीय उपागम मानव पूंजी के स्टॉक तथा प्रति व्यक्ति अधिक आर्थिक उत्पादन के संबंध पर बल देता है। इससे यह संकेत मिलता है कि व्यक्ति अधिक आय पाने पर अपने बच्चों को अधिक स्कूली शिक्षा सुलभ करवाता है, जैसे कि वह फ्रिज या कार खरीदता है। इस संदर्भ में स्कूल शिक्षा एक उपभोक्ता वस्तु है न कि कंप्यूटर तथा मशीन कि तरह निवेश की वस्तु। अर्थशास्त्रियों ने यह दर्शाया है कि जिन देशों ने उच्च आर्थिक वृद्धि की दर बनाये रखी है वहां साक्षरता दर बहुत अधिक थी तथा अपने देश की श्रमिक शक्ति के स्तर को बढ़ाने के लिए भी भारी-भरकम निवेश किया है।

सूचना अर्थव्यवस्था, भूमंडलीकरण तथा उत्पादन के लचीले ढाचों की तरफ झुकाव ने अर्थशास्त्रियों में उत्पादन प्रक्रिया में मानव पूंजी के योगदान की बहस को बढ़ावा दिया है। विकास के नये सिद्धांत इस बात पर बल देते हैं कि विकासशील देश विकसित देशों के करीब पहुंच सकते हैं, अगर उनके पास श्रमिकों का ऐसा स्टॉक हो जो स्वयं नई तकनीक विकसित कर सकें या फिर विदेशी तकनीक को समझ और इस्तेमाल कर सकें।

यह दावा कि शिक्षित श्रमिक अवसरों तथा तकनीक में परिवर्तनों एवं प्रतियोगात्मक बाजार के संदर्भ में अपने आप को प्रभावी रूप से ढाल लेता है, शिक्षित श्रमिकों का वेतन बढ़ाता रहेगा। विज्ञान आधारित उद्योग जैसे- रसायन, बायो-तकनीक, संचार व्यवस्था की वृद्धि ने स्पष्ट किया है कि आर्थिक विकास उच्च शिक्षित तथा विज्ञान प्रशिक्षित श्रमिक पर आधारित है। केवल वैज्ञानिक प्रशिक्षित श्रमिक की मांग बढ़ने के अतिरिक्त अर्थशास्त्रियों का मानना है कि नये तरीके का उत्पादन, नवाचार तथा वृहद स्तर पर कार्य करना गैर-वैज्ञानिक श्रमिकों के संदर्भ में भी काफी लाभदायक है।

शिक्षित श्रमिक इस तरह के मॉडल में उत्पादन दो तरीकों से बढ़ाते हैं: अ) शिक्षा श्रमिकों का कौशल बढ़ाती है, जिससे श्रमिक अधिक उत्पादन करते हैं, ब) शिक्षा श्रमिकों के सोचने की शक्ति बढ़ाती हैं (जिससे वह उपलब्ध तकनीक को नये तरीके से प्रयोग करता है तथा नई तकनीक का सृजन करता है) और अपना तथा दूसरे श्रमिकों का उत्पादन बढ़ाता है।

उत्पादन के रूप में शिक्षा मानव पूंजी के परिप्रेक्ष्य को दर्शाती है, श्रमिक की गुणवत्ता में सुधार करती है तथा तकनीकी विकास की अनुमति देती है। दूसरा, आर्थिक विकास प्रक्रिया के केंद्र में मानव पूंजी पर बल देती है।

इस दूसरे मॉडल में नवाचार तथा काम के साथ-साथ सीखने की प्रक्रिया को उत्पादन प्रक्रिया के अंतर्जात ही माना गया है। यह मॉडल पहले ही मान लेता है कि फर्म तथा अर्थव्यवस्था में उत्पादन बढ़ोत्तरी स्वत: सृजन प्रक्रिया है। (लुकास 1988, रोमर 1990)। काम के साथ-साथ सीखना एवं नवाचारों को कंपनियों में पुरस्कृत किया जाता है तथा उन समुदायों में भी जहाँ श्रमिकों की वृहद भागीदारी को निर्णयकारी माना जाता है, क्योंकि इन्हीं कंपनियों तथा सोसायटी में शिक्षित श्रमिकों को अपनी सृजनकारी क्षमता को प्रस्तुत करने का मौका मिलता है।

शिक्षा के आर्थिक मूल्य के निहितार्थ नवाचार के अन्तर्जात प्रतिरूप और काम के साथ सीखने की प्रक्रिया का प्रभाव बहुत ही महत्वपूर्ण है। उच्च शिक्षित श्रमिक विशेषतौर पर वैज्ञानिक कौशलयुक्त तथा प्रबंधन श्रमिक जो बहुत ही महत्वपूर्ण नवाचारों का सृजन करते हैं, की मांग अन्य स्तर और प्रकार के शिक्षित श्रमिकों की तुलना में बहुत अधिक रहती है। कार्य संगठन के माध्यम से शिक्षा का आर्थिक मूल्य मानव की अधिक उत्पादन करने की क्षमता और नवाचार द्वारा प्राप्त करने के जटिल

संबंध से सृजित होती है। इस प्रकार शिक्षा का मूल्य केवल कार्य नहीं है जो कि अधिक शिक्षित श्रमिक श्रम बाजार में प्राप्त करता है। वास्तव में, सूचना, विचारधारा, राजनैतिक शक्ति, संपत्ति अधिकार, कार्यस्थल पर नागरिक अधिकार तथा संगठनों द्वारा नवाचार के प्रति इच्छा, यह सभी मिलकर शिक्षा का आर्थिक मूल्य का निर्धारण करते हैं।

यह तथ्य कि अधिक शिक्षा प्राप्त करने वाले व्यक्ति अधिक कमाते हैं स्पष्ट करता है कि शिक्षा विकास में सहायक है। शिक्षा तथा अधिक कमाई का संबंध शिक्षा तथा आर्थिक विकास के बीच एक व्यक्तिगत उपागम है। अधिक शिक्षा के साथ-साथ अधिक कमाई उच्च उत्पादन दर्शाता है। इस प्रकार अर्थव्यवस्था में शिक्षित श्रमिक अधिक आर्थिक उत्पादन तथा उच्च वृद्धि दर से जुड़ा है। अधिक शिक्षित व्यक्ति के लिये अधिक आय राजनैतिक पुरस्कार भी दर्शाता है जो कुलीन वर्ग अपने सदस्यों को देता है अर्थात् समाज के प्रभावी वर्ग को प्रभावी वेतन। परन्तु दीर्घकाल में एक ऐसी आर्थिक व्यवस्था को लाभ नहीं मिलता जहां अधिक उत्पादन करने वाले श्रमिकों को लाभ नहीं मिलता तथा राजनैतिक शक्ति वाले लाभ ले जाते हैं। पूर्वी यूरोप के देशों में समाजवादी व्यवस्था में आर्थिक वृद्धि न होने का एक कारण यही था कि वहां राजनैतिक शक्ति वाले लोगों को लाभ मिलता रहा तथा वास्तव में उत्पादन करने वाले व्यक्तियों को लाभ प्राप्त नहीं हुआ। इसी प्रकार चीन ने भी यह पाया कि सतत् आर्थिक वृद्धि के लिए बाजार लाभ-वेतन सहित, जो कि श्रमिक-उत्पादन अंतर को दर्शाता है, आवश्यक है।

उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों को मिलने वाला अधिक वेतन स्पष्ट करता है कि समुदाय में उनका आर्थिक मूल्य कम शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों से अधिक है। अर्थशास्त्रियों अधिक शिक्षा के लाभ की तुलना इसकी लागत से करते हैं जिस प्रकार किसी निवेश की करी जाती है। वह आकलन करते हैं कि शिक्षा में निवेश की गई कुल धन राशि जीवनकाल में उन्हें अधिक वेतन के रूप में कितना लाभ प्रदान कर सकती है। शिक्षा में लाभ की दर लगभग सभी देशों में सकारात्मक है। यूरोप में शिक्षा में लाभ की दर 7-8 प्रतिशत है परन्तु कई विकासशील देशों में यह उच्च भी हो सकती है। उदाहरण के लिये ब्राजील में शिक्षा में निवेश की लाभ दर 12-14 प्रतिशत है। शिक्षा में सकारात्मक लाभ की दर दर्शाती है कि शिक्षा में निवेश विकास में योगदान करता है।

शिक्षा - आर्थिक विकास संबंध का समष्टि उपागम

एक अभिसरण मॉडल ढांचे के अंतर्गत विकास का प्रथम समष्टिगत विश्लेषण 1980 के अंत में शुरु हुआ, परंपरागत अभिसरण विश्लेषण में देशों के बीच संपत्ति में विभिन्नता का विश्लेषण में सुधार की आवश्यकता है। इस प्रकार अर्थशास्त्री प्रारंभिक दशाओं में रूचि रखते हैं जो दीर्घ स्तर में आर्थिक अभिसरण का निर्धारण करती हैं। इस निर्धारित, अभिसरण का कारण श्रम शक्ति के शिक्षा का स्तर है।

बारो (1990) ने सर्वप्रथम दर्शाया कि किसी भी संपदा के लिये, आर्थिक विकास दर देश की प्रारंभिक मानव पूंजी स्तर के साथ सकारात्मक रूप से जुड़ी है, जबकि निर्धारित मानव पूंजी के संदर्भ में विकास दर जी.डी.पी. के प्रारंभिक स्तर के साथ नकारात्मक संबंध रखती है।

अज़ेयरियादिस तथा ड्रॉजन (1990) ने बारो विश्लेषण को आधार बनाते हुए माना कि आर्थिक विकास कोई प्रक्रिया नहीं है, परन्तु यह कई चरणों में चलती है जो देश को किसी स्तर पर ले जाने का कार्य करती है। यह नतीजे दर्शाते हैं कि प्रारंभिक साक्षरता दर विकास के विभिन्न स्तरों पर विकास में भिन्न भूमिका निभाती है। साक्षरता विकासशील देशों में विकास की भिन्नता से रिश्ता रखती है। परन्तु यह विकसित देशों के विकास से संबंध नहीं रखती है।

मानकीव, रोमेर तथा विल (1992) ने शिक्षा तथा वृद्धि के विश्लेषण के संदर्भ में नया तर्क रखा। इन्होंने सोलोस के भौतिक तथा मानव पूंजी के साथ सामूहिक उत्पादनकर्त्ता का प्रयोग किया। इस अध्ययन का विशिष्ट अनुमान यह है कि इससे राज्य स्थिर हुये, जिसमें बचत, जनांककीय वृद्धि तथा मानव पूंजी में उनके निवेश ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। ये विविध स्थिर राज्य विकास की असमानताओं को बनाए रखने के कारणों को स्पष्ट करते हैं।

इसी मॉडल का प्रयोग करते हुए बारो (1990), बारो तथा ली (1994) ने तर्क रखा कि जिन देशों में माध्यमिक स्तर एक वर्ष या उससे अधिक ज्यादा अवधि का है वहां वार्षिक विकास दर अधिक यानि (लगभग 1.34 या अधिक) है। यह दर अतिरिक्त चरों जैसे (कालाबाजारी, राजनैतिक अस्थिरता तथा अर्थव्यवस्था का खुलापन) के साथ भी सुदृढ़ रही।

विभिन्न अध्ययन दर्शाते हैं कि विभिन्न देशों के विकास दरों में विचरण, आंशिक रूप से मानव पूंजी के प्रारंभिक स्तर द्वारा समझाया जा सकता है। परन्तु क्या शिक्षा में उच्च निवेश विकास के मार्ग को प्रमाणित करता है।

मानव पूंजी के उच्च स्टॉक के बीच संबंध में अध्ययन के अतिरिक्त बारो तथा ली (1994) ने दर्शाया कि जिन श्रमिकों ने 1965–85 में माध्यमिक स्कूल स्तर प्राप्त किया था, विकास पर उनका प्रभाव सकारात्मक रहा। परन्तु दूसरों द्वारा किये गये आकलन इन नतीजों की पुष्टि नहीं करते। सामूहिक उत्पादनकर्त्ताओं का प्रयोग करते हुए बेनहबीब तथा स्पीगल (1994) तथा प्रिटेचेट (1996) ने मानव पूंजी के निवेश को मापने का प्रयास किया। उन्होंने मानव पूंजी के विभिन्न मापकों, जैसे क्यरिकाओ (1991) और बारो तथा ली (1994) के द्वारा आकलित शिक्षा के वर्षों समेत, साक्षरता दर तथा माध्यमिक नामांकन दर (1994) का प्रयोग किया। शिक्षा के चाहे किसी भी चर का प्रयोग हुआ हो, उससे संबंधित गुणांक या तो निरर्थक या फिर नकारात्मक रहे।

संक्षेप में, प्रारंभिक स्तर की शिक्षा अगर प्रासंगिक रूप से उच्च है तो यह भविष्य में होने वाली आर्थिक विकास का महत्वपूर्ण कारक है (जिन देशों में सन् 1960 में शिक्षा का उच्च स्तर था वहां ठोस आर्थिक वृद्धि देखी गई) हालांकि यह अनिश्चित विकास है कि शिक्षा में निवेश आर्थिक वृद्धि में बढ़ोत्तरी करेगा।

1990 के दशक में नये आर्थिक उपकरणों ने विभिन्न देशों में आकलन हेतु अस्थायी आयामों को एकीकृत किया। ये छूटे हुये चरों के बेहतर नियंत्रण में सहायक हुए तथा आर्थिक विकास में शिक्षा की भूमिका संबंधी आकलनों के सुधार में सहायता मिली। इस पैनल का विश्लेषण[2] मॉनकीव, रोमर तथा विल (1992) एम.आर.डब्ल्यू के द्वारा प्राप्त नतीजों पर है और दर्शाता है कि किस प्रकार अस्थायी आयामों का एकीकृत स्वरूप नतीजों को संशोधित करता है। नाईट, लोयाज़ा तथा विलानुमेवा (1993) ने निम्नांकित निष्कर्ष निकाले : माध्यमिक स्कूलों का जनतांत्रीकरण उपागम आर्थिक विकास से सकारात्मक रूप से जुड़ा हुआ है। परन्तु नामांकन दर में बढ़ोत्तरी इसी अवधि के दौरान जी.डी.पी. (सकल घरेलू उत्पाद) की वृद्धि के साथ नकारात्मक रूप

[2] नाईट, लोयासा तथा विलानुयेवा (1993), इस्लाम (1995), जुडसन (1995), नार्थलेमी, डेस्स तथा वरूदाकिस, बसानी तथा स्कारपेडा (2001) डेस्स (2001)

से संबंधित है। 1960 तथा 1985 के बीच अधिक खर्च न करते हुए विकासशील देशों में माध्यमिक स्कूल की सुगमता हेतु ठोस जनतांत्रीकरण हुआ।

यह प्रभाव समरूप नहीं था और मानव पूंजी में निवेश खुली अर्थव्यवस्था में जहां सार्वजनिक आधार संरचना बेहतर ढंग से विकसित थी, ज्यादा प्रभावी ढंग से हुआ।

इस्लाम (1995) ने भी एम.आर.डब्ल्यू मॉडल का अस्थायी आयामों के साथ परीक्षण किया। उसने दर्शाया कि शिक्षा से जुड़ा गुणांक नकारात्मक था और किसी भी देश के प्रतिदर्श में यह नकारात्मक ही रहा। बर्थेलेमी, देसिस तथा वरुदायकिस (1997) ने इस परिणाम की पुष्टि की। जब भी स्टॉक या चल आंकड़ा के रूप में मानव पूंजी को सम्मिलित किया गया। आर्थिक वृद्धि पर इसका प्रभाव नकारात्मक ही रहा।

हालांकि, अधिकांश पैनल आंकड़ा विश्लेषण दर्शाता है कि शिक्षा में निवेश विकास पर सकारात्मक प्रभाव नहीं डालता। परंतु जुडसन (1995) ने विभिन्न पैनल आंकड़ा के आधार पर अपने मॉडल का परीक्षण किया तो संबंध सकारात्मक पाया। मैकमोहन (1998) ने भी शिक्षा पर व्यय, नामांकन दर तथा आर्थिक वृद्धि के बीच सकारात्मक संबंध देखे जब उन्होंने ऐसे एशियाई देशों के प्रतिदर्श पर आधारित मॉडल का विश्लेषण किया जहां शिक्षा तथा विकास के बीच ठोस संबंध था। (लाऊ, जैमिसन तथा लुयाल) 1991

इन विरोधाभासी परिणामों के बावजूद ऐसा लगता है कि विकास के लिये उच्च शिक्षा का योगदान सकारात्मक है। उदाहरण – इन अध्ययनों के अलावा हमने अर्थमित्तीय समीक्षा मॉडलों में जिसमें आर्थिक वृद्धि हेतु शिक्षा के स्तर का परीक्षण किया गया है, मध्यपूर्व तथा एशिया के विकासशील देशों के प्रतिदर्श में बाउतरोले (2005), ने पाया कि केवल तृतीयक क्षेत्रों के स्नातकों का ही आर्थिक विकास के संबंध में सकारात्मक संबंध था।

उन्होंने यह भी आकलन किया कि विभिन्न स्तरों की शिक्षा का प्रभाव आर्थिक विकास के स्तरों के अनुसार बदलता रहता है। विकासशील देशों में प्राथमिक स्कूल स्नातकों में वृद्धि जी.डी.पी. में वृद्धि से संबंध रखती है। यह नतीजे उन विश्लेषणों की पुष्टि करते हैं जो दर्शाते हैं कि किस प्रकार साक्षरता, संख्या तथा अन्य उच्च स्तर के

बुनियादी कौशल उत्पादन, विशेषतौर पर कृषि क्षेत्र में सकारात्मक असर डालते हैं तथा जन्म एवं मृत्यु दर में कमी लाते हैं। प्राथमिक शिक्षा का सार्वजनीकरण कृषि अर्थव्यवस्था से औद्योगिक अर्थव्यवस्था की तरफ बढ़ने के लिये एक आवश्यक दशा है।

आर्थिक विकास के विकसित चरण में कृषि पर आधारित जनसंख्या में कमी आती हैं, शहरों में ग्रामीण क्षेत्रों से लोग आते हैं तथा तीव्र औद्योगीकरण होने लगता है। श्रम शक्ति में माध्यमिक स्कूल के स्नातकों का अनुपात मुख्य संकेतक होता है। उदाहरण के लिये दक्षिण कोरियाई सरकार ने हमेशा औद्योगिक क्षेत्र की मांग को देखते हुए माध्यमिक स्तर के स्नातकों का समायोजन किया। इसी प्रकार, इंडोनेशिया में सुहार्तो द्वारा विकसित औद्योगिक नीति भी व्यावसायिक माध्यमिक स्कूलों की संख्या को बढ़ाने से संबंधित थी। इसी प्रकार, चिली में भी 80 और 90 के दशक की आर्थिक नीतियों में माध्यमिक शिक्षा का तीव्र विस्तार किया गया, विशेषतौर पर व्यावसायिक माध्यमिक शिक्षा का।

श्रम शक्ति में तृतीयक स्तर पर स्नातकों की बढ़ोत्तरी का आर्थिक विकास के विभिन्न चरणों में विभिन्न संबंध होता है। विकास के निम्न स्तर पर, जहां अर्थव्यवस्थाओं में विश्वविद्यालय प्रशिक्षित श्रमिकों का भाग अपेक्षाकृत थोड़ा अधिक होता है वहां आर्थिक विकास कम होता है। पिटचेट (1996) के अनुसार उच्च शिक्षा स्नातक तथा आर्थिक विकास के बीच का संबंध किराये की तरह है जहां शिक्षित व्यक्ति ऐसे रोजगार की तलाश में है जो उत्पादक नहीं है। परन्तु जब अर्थव्यवस्था औद्योगिकीकरण के दूसरे चरण में प्रवेश करती है तब यह स्नातक, देश की उत्पादकता गतिकी में भाग लेते हैं।

विकसित देशों में शिक्षित कार्मिकों की भूमिका सकल घरेलू उत्पाद के संबंध में बहुत ही सकारात्म्क रहती है। वास्तव में सोरेनसेन (1999) द्वारा विकसित मॉडल तथा फंके तथा स्त्रुलिक (2000) के मॉडल में जब कोई देश विकास के उच्च स्तर पर पहुंचता है तो आर्थिक विकास पर मानव पूंजी की भूमिका श्रम उत्पादकता पर सीधे प्रभाव से हटकर नवाचार तथा तकनीकी प्रगति का संपूर्ण प्रबंधन करते हुये श्रमिकों की क्षमता वर्धन के माध्यम से अप्रत्यक्ष प्रभाव की ओर रूख करती है।

चीन और भारत में किये गये अध्ययनों से पता चलता है कि आर्थिक विकास में शिक्षा महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। परन्तु यह अध्ययन अधिकतर उत्पादन

प्रकार्यों के आर्थिक उत्पादनों के आकलन से संबंधित है, ये विकास मॉडल नहीं हैं। इसके बावजूद 1970 में किये गये अध्ययन यह सुझाते हैं कि आर्थिक विकास में शिक्षा का योगदान 1950 के दशक में 5 प्रतिशत से बढ़कर 1960 में 10 प्रतिशत हो गया और बाद में किये गये अध्ययनों में यह 27–30 प्रतिशत हो गया (तिलक 2007)।

इसी प्रकार चीन में किये गये अध्ययनों की रिपोर्ट है कि आर्थिक विकास में शिक्षा के उच्च स्तर तथा जी.डी.पी. के बीच सकारात्मक संबंध हैं। यहां राष्ट्रीय तथा प्रांतीय स्तर पर संगठित आंकड़ा का प्रयोग किया गया था। (फ्लेशियर 2002 पृ. 6)। डीमर्गर (2001) के द्वारा किये गये आकलन तथा चेन एवं फैंग (2000) द्वारा किये गये आकलन दर्शाते हैं कि उच्च शिक्षित जनसंख्या समूह का सभी प्रांतों में आर्थिक विकास के साथ सांख्यिकी रूप से भी महत्वपूर्ण सकारात्मक तथा संतुलित संबंध था। वॉग तथा याओ (2002) ने दर्शाया की 1978–99 में मानव पूंजी में निवेश ने लगभग प्रति व्यक्ति विकास में 10 प्रतिशत से अधिक का योगदान किया (फ्लेशियर 2002 पृ. 7)।

संक्षेप में, शिक्षा दीर्घकालीन विकास में योगदान करती है। शिक्षा में अधिक निवेश करने वाले देशों में 20 से 30 वर्ष पहले के मुकाबले आर्थिक वृद्धि की दर अधिक रही। दूसरी तरफ इसी समय के अनुसंधान अध्ययन सुझाते हैं कि श्रम शक्ति में शिक्षा का उच्च स्तर विकास में सहायक होता है, विशेषत: जब अर्थव्यवस्था विकास का उच्च स्तर प्राप्त करती है।

शिक्षा–आर्थिक विकास संबंध में व्यष्टि अर्थशास्त्रीय उपागम

आय तथा शिक्षा के बीच व्यष्टिगत अर्थशास्त्र अनुसंधान–विकास–शिक्षा के बीच के संबंधों का एक दूसरा लैंस है। हम मानते हैं कि शिक्षा के किसी स्तर में लाभ की दर उच्च होने पर उस स्तर में निवेश आर्थिक विकास में सहायक सिद्ध होगा। कई वर्षों तक विश्व बैंक इस बात को मानता आया है कि प्राथमिक शिक्षा में लाभ की दर सर्वाधिक तथा विश्वविद्यालय स्तर पर सबसे कम रही है और यह पद्धति सतत् जारी है। इस प्रकार राष्ट्र, आर्थिक विकास में बढ़ोत्तरी हेतु प्रारंभिक शिक्षा में निवेश पर ध्यान केंद्रित करें (सकारापाऊलस 1973, 1983) अगर ऐसा है, तो उच्च शिक्षा में निवेश कम फायदा पहुंचाने वाली रणनीति होगी।

तालिका-1

शिक्षा के संदर्भ में निजी तथा सामाजिक लाभ की दर विभिन्न वर्ष, 1970-80, देश तथा शिक्षा के स्तर के अनुसार

(कक्षा स्तर के अंदर प्रति स्कूली वर्षों का वार्षिक प्रतिशत)

देश	निजी लाभ दर			सामाजिक लाभ दर		
	प्राथमिक	द्वितीयक	तृतीयक	प्राथमिक	द्वितीयक	तृतीयक
मिस्र 1988*	5	6	9			
मिस्र 1998*	5	6	8			
जार्डन 1997*	3	9	7			
जार्डन 2004*	2	4	9			
मोरक्को 1991*	8	9	12		9	10
मोरक्को 1999*	5	8	9		8	9
यमन 1997*	3	2	4			
इंडोनेशिया 1977		25	16			
इंडोनेशिया 1978				22	16	15
इंडोनेशिया 1989					11	5
कोरिया 1974		20	19		16	12
कोरिया 1979		14	19		11	12
कोरिया 1986		10	19		8	12
फिलीपीन्स 1971	9	6	10	7	6	8
फिलीपीन्स 1977			16			8
फिलीपीन्स 1988	18	10	12	13	9	10
अर्जेंटाइना 1985	30	9	11			
अर्जेंटाइना 1987		14	12		12	11
अर्जेंटाइना 1989	10	14	15	8	7	8
अर्जेंटाइना 1996		16	16		12	12
ब्राजील 1970		25	14		24	13

देश	निजी लाभ दर			सामाजिक लाभ दर		
	प्राथमिक	द्वितीयक	तृतीयक	प्राथमिक	द्वितीयक	तृतीयक
ब्राजील 1989	37	5	28	36	5	21
चिली 1976	28	12	10	12	10	7
चिली 1985	28	11	10	12	9	7
चिली 1987		19	20		15	15
चिली 1989	10	13	21	8	11	14
चिली 1996		16	20		11	17
कोलम्बिया 1973	15	15	21			
कोलम्बिया 1989	28	15	22	20	11	14
मैक्सिको 1984	22	15	22	19	10	13
पेरू 1980				41	3	16
पेरू 1990	13	7				
पेरू 1997		8	12		7	11
उरुग्वे 1987		19	18		19	16
उरुग्वे 1989		10	13		8	12
उरुग्वे 1996		36	12		30	10

स्रोत: एलेन, 2001, सी.आर.ई.एस.यू.आर., 2004

परन्तु ऐसा नहीं है। हालांकि, देशों के बीच शिक्षा में लाभ की दर में विभिन्नता होती है परन्तु पिछले 30 वर्षों से प्रभावी रूप से यह तथ्य सामने आया है कि प्राथमिक स्कूलों में निवेश की वापसी की दर गिर रही है और उच्च स्तर की शिक्षा में बढ़ रही है (कार्नाय 1972; कार्नाय 1975)। 1990 के दशक तक कई विकासशील देशों में तथा विकसित देशों में उच्च शिक्षा में निवेश में लाभ की दर प्राथमिक तथा माध्यमिक स्कूल से अधिक रही। तालिका-1 विकासशील देशों में परिवर्तित होते रहे निवेश लाभ की दर को दर्शाती है। निजी दर व्यक्तियों द्वारा शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर निवेशित लाभ दर को दर्शाती है (हालांकि, यह आमतौर पर ठीक नहीं होती, बढ़ते हुए आय दर के लिये जो कि व्यक्ति उच्च आय प्राप्त करने पर देता है); सामाजिक दर

निजी लाभ की दर का प्रतिनिधित्व करती है परन्तु इसमें निजी तथा सार्वजनिक लागत दोनों सम्मिलित होती हैं। जबकि सार्वजनिक लागत निजी व्यक्तियों द्वारा देय नहीं होती है। आमतौर पर यह मान्य है कि उच्च शिक्षा में निवेश में लाभ की दर प्रासंगिक रूप से कम स्तर की शिक्षा से अधिक होती है। मध्यपूर्व में यह दर सबसे कम थी तथा पूर्वी एशिया तथा लैटिन अमेरिका में अधिक थी।

इसके अतिरिक्त जैसा कि हम, आगे भी चर्चा करेंगे, सामाजिक निवेश के लाभ की दर में बाह्य कारक जैसे व्यक्तिगत निवेश, और वह बाह्य कारक जो सभी के लिये लाभदायक होते हैं, सम्मिलित हैं। उदाहरण के लिये, ब्लूम कैनिंग तथा चैन का मानना है कि उच्च शिक्षा में निवेश तकनीकी विकास के माध्यम से आर्थिक विकास में वृहद रूप से सहायक होगा। ''ज्ञानपरक अर्थव्यवस्था'' में उनका मानना है कि 'तृतीयक अर्थव्यवस्था में अधिक प्रौद्योगिकी का समाज को लाभ मिलेगा, क्योंकि स्नातक प्रौद्योगिकी के बारे में जानकारी तथा उसके प्रयोग के बारे में जागरूक होंगे। (ब्लूम, कैनिंग तथा चान, 2006, पृ. iii)

1980 में ब्राजील में उच्च शिक्षा में वेतनमान इस बात की पुष्टि करता है कि यह प्रतिरूप सही था। 80 के दशक के अंत में ब्राजील की खुली अर्थव्यवस्था तथा उच्च मूल्य वाले निर्यातों पर बल को आधार बनाकर यह मानने का कोई कारण नहीं है कि सबसे उच्च शिक्षा में निवेश लाभ की दर में गिरावट आई है।

शिक्षा में लाभ की दर चीन तथा भारत में भी आकलित की गई। यह प्रत्येक अध्यन में अलग-अलग थी। 1993 के निजी दर प्राथमिक विद्यालयों में 18 प्रतिशत, माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा में क्रमशः 13 तथा 15 प्रतिशत आकलित की गई। सामाजिक दर क्रमशः 14, 13 तथा 11 थी (हुसैन, 1977)। निजी लाभ की दर पर ली द्वारा दूसरा आकलन 1995 के चीन की परिवार आय परियोजना के आकड़े घंटों के हिसाब से शहरी वेतन पर आधारित है। यह दर्शाता है कि माध्यमिक या इससे ऊँचे स्तर में निवेश की निजी लाभ दर समूह के लिये बढ़कर 5.8 प्रतिशत हो गई थी, जिन्होंने 1980 से पहले नौकरी प्राप्त कर ली थी। 1980-85 के बीच नौकरी प्राप्त करने वालों के लिए यह 9.5 प्रतिशत थी। (ली 2001, फ्लायशिर 2002, तालिका-3)[3]। ली

[3] ली ने वेतन आकलन कालेज से प्राथमिक स्नातकों की दिहाड़ी के दशम मूल को लेकर किया है।

के अनुसार माध्यमिक शिक्षा में निवेश के लाभ की दर गांसु प्रांत में (9.9 प्रतिशत), गुयांगडोंग प्रांत के (3.6 प्रतिशत) की तुलना में बहुत अधिक थी। 1990 में माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा में गुयानडोंग जिले में गांसु के मुकाबले आयु समूह अधिक था पर जैसा कि फ्लायशर ने इंगित किया है, 1990 में गुयांगडोंग आर्थिक विकास का केंद्र था। इस प्रकार ये नतीजे काफी चौंकाने वाले हैं (फ्लायशर, 2002 पृ. 11)। हाल ही के एक आलेख में यांग (2006) ने इसी प्रकार के नतीजे प्राप्त किये। यांग ने पाया कि 1988 तथा 1995 के परिवार के सर्वेक्षण में शहरी श्रमिक के लिए लाभ की दर प्रति स्कूल के स्तर पर 4 से 7 प्रतिशत मंद पाई गई और प्रतिवर्ष शहर में लाभ की दर शहरी श्रमिक के वेतन से नकारात्मक रूप से संबंधित थी (यांग 2006, चित्र 2)। इस प्रकार औसत रूप से कम वेतन वाले शहरों में शिक्षित वर्ग का वेतन अच्छा था।

चीन में शिक्षा के लाभ के संबंध में वेतन का आकलन करने में समस्या यह है कि चाहे मासिक वेतन हो या दिहाड़ी इस बात को कुछ हद तक ही स्पष्ट करता है कि उसे शिक्षा में निवेश के लाभ के दर के रूप में क्या मिल रहा है। परन्तु यह उच्च शिक्षा से संबंधित उत्पादन वृद्धि को नज़रअंदाज कर देते हैं। फ्लायशर तथा चेन (1997) का आकलन कुल उत्पादन कारकों व अन्य चरों के साथ आबादी में नये स्नातकों के आगमन का विश्लेषण करता है, ने पाया कि तटीय प्रांतों में उच्च शिक्षा में निवेश लाभ की दर 34 प्रतिशत थी तथा गैर-तटीय प्रदेशों में 40 प्रतिशत। इन नतीजों के आधार पर फ्लायशर (2002) का निष्कर्ष था कि उन प्रांतों में जहाँ कॉलेज स्नातकों का अनुपात ज्यादा है (प्रति व्यक्ति जी.डी.पी. अधिक है) वहां सीमांत दरें कम हैं (कम आय वाले प्रांतों की तुलना में जहां स्नातकों की संख्या कम है)। (पृ. 6)। यहां प्रश्न उठता है कि क्या यह दरें जो कुल उत्पादन कारकों से प्राप्त की गयी हैं आय के आकलन और उच्च शिक्षा के संबंध में वेतन की सच्ची तस्वीर प्रस्तुत करती हैं, 1990 में चीन ने यह मानते हुये कि अधिकांश श्रमिकों को राज्य ने रोजगार दिया हुआ था, ऐसा होना संगत था।

तालिका-2 में 1960 में भारत में शिक्षा में निवेश की निजी लाभ की दर दर्शाई गई है। यह चीन से कहीं अधिक है। जैसा कि कई देशों में है, भारत में उच्च शिक्षा के संदर्भ में वेतन अधिकांश देशों की तरह कम स्तर की शिक्षा की तुलना में बढ़ रहा है। हालांकि, कालेज दरों की तुलना में निम्न माध्यमिक स्तर में यह दर अधिक है।

तालिका–2

भारत में निजी लाभ वापसी की दर अध्ययनों का सार

	प्राथमिक विद्यालय	मिडिल विद्यालय	माध्यमिक विद्यालय	वरिष्ठ मा. विद्यालय	कालेज बी.ए.	विश्वविद्यालय इंजीनियरिंग
नेलागौंडन (1967)	23.0	13.0	10.0		8.1	
ब्लॉग (1969)	18.7	16.1	11.9		10.4	
कोठारी (1967, 1970)					14.0	25.0
ब्लॉग (1972)	16.5	14.0	10.4		8.7	
सकारापॉउलस (1973)	24.7		19.2		14.3	
गोयल (1975)	10.4^{γ}	10.1	6.0		6.4	
पंडित (1976)	17.3	18.8	5.0	5.20	9.21	
शॉटलिज (1974)					16.2β	
तिलक $(1987)^{\delta}$	33.4	25.0	19.8	14.01	13.2	
तिलक $(1987)^{\varepsilon}$	7.82	8.54	नकारात्मक	2.4	6.82	
राव एवं दत्ता (1989)			5.3		5.07	
दुराईस्वामी $(2002)^{\delta}$	709	7.4	17.3	9.3	11.7	14.6
दुराईस्वामी $(2002)^{\varepsilon}$	7.8	7.4	17.7	9.7	12.7	16.6

स्रोत : यह तालिका असोका 2006 की तालिका पर आधारित है। प्रमुख स्त्रोत हैं: हेयनामेन (1980, पृ. 146): सकारापॉउलस (1973, पृ.62); तिलक (1987, पृ. 52, पृ. 85), दुराईस्वामी (2002, पृ. 22), राव तथा दत्ता (1989, पृ. 377)

γ: अधिक असाक्षर; β: केवल कृषि कालेज; δ: असमायोजित आकलन; ε: समायोजित आकलन

असोका (2006) के हाल ही के अध्ययन में यह सुझाव दिया गया कि विश्वविद्यालयी शिक्षा पूर्ण करने के संबंध में निजी निवेश के लाभ की दर 1993 में 16 राज्यों के शहरी क्षेत्रों में सकारात्मक थी और राज्य के जी.डी.पी. के साथ महत्वपूर्ण रूप से संबंधित थी। इस प्रकार जिन राज्यों का विकास अधिक हुआ है, वहाँ विश्वविद्यालय लाभ की दर अधिक थी। यह चीन में 1990 में फ्लायशर तथा यांग के अध्ययन के निष्कर्षों से बिल्कुल विपरीत है। असोका ने यह भी पाया कि 1993 में कुछ भारतीय राज्यों को छोड़कर माध्यमिक तथा प्राथमिक विद्यालयों की दरों के मुकाबले उच्च शिक्षा की लाभ की दरें मंद होने के बावजूद इनसे अधिक थीं।

तिलक (2003) ने हाल ही में भारत के 1983, 1993 तथा 1999 में, नियमित दिहाड़ी श्रमिक तथा आकस्मिक दिहाड़ी श्रमिकों के संदर्भ में शिक्षा के सभी स्तरों पर निजी निवेश में लाभ की दरों का पुनः आकलन किया। यह अध्ययन दर्शाता है कि प्राइमरी, मिडिल तथा माध्यमिक स्कूलों के संदर्भ में दर गिरती जा रही है जबकि विश्वविद्यालय के संदर्भ में बढ़ रही है। इन तीनों वर्षों में विश्वविद्यालय से संबंधित दरें काफी अधिक थीं। (तिलक 2003, तालिका 3)। तिलक का आकलन है कि 1999 में शिक्षा में निजी लाभ की दर 10 प्रतिशत तक थी।

हालांकि, शिक्षा में निवेश के संबंध में लाभ की दरों के बारे में हम रूस के संदर्भ में आंकड़े प्राप्त नहीं पाये परन्तु कुछ आंकड़े दर्शाते हैं कि 1987–89 तथा 1997–99 के बीच आय की असमानता 0.25 गिनी से 0.43 गिनी हो गई जो कि संक्रमण अर्थव्यवस्था में सबसे लंबी छलांग थी (रिमाशेसकाय तथा किसलिरसयना 2004, चित्र–1)। इससे पता चलता है कि उच्च शिक्षा वाले श्रमिक जिनके पास उच्च आय वाली नौकरियों की पहुंच अधिक थी, उनका वेतन कम शिक्षा वाले श्रमिकों की तुलना में ज़्यादा बढ़ा।

इस प्रकार रूस में संक्रमित अर्थव्यवस्था ने विभिन्न क्षमताओं वाले श्रमिकों के वेतन में अंतर पैदा किया और नये श्रम बाजार के लाभ उठाने की दशा पैदा की। इसी प्रकार के परिवर्तन चीन में आये और इन परिवर्तनों के साथ, आय की बढ़ती असमानताएं, पैदा हुई। गिनी गुणांक 1985–89 में 0.37 से बढ़कर 1996–2000 में 0.40 तक पहुंच गया। (विश्व बैंक संकेतक)। अगर यह प्रवृति बढ़ती रहे तो हमें उच्च शिक्षा में बढ़ती हुई लाभ की दरें प्राप्त होंगी। दूसरी ओर, भारत तथा ब्राजील में आय का वितरण बेहद

तटस्थ रहा, पिछले बीस वर्षों में ब्राजील में असमानता का स्तर (गिनी – 0.60) काफी अधिक था जबकि भारत में असमानता का तुलनात्मक स्तर कम था (गिनी – 0.33, परिवार के व्यय आंकड़े पर आधारित) तथा (0.43) परिवार आय के आंकड़ों पर आधारित था)। इस प्रकार इन देशों में उच्च शिक्षा में अधिक लाभ वापसी की दरों का कारण आपूर्ति की तुलना में उच्च शिक्षित श्रमिक की मांग का अधिक होना था।

ब्रिक देशों की अर्थव्यवस्था में उच्च शिक्षा के बदलते स्वरूप

उच्च शिक्षा के संभावित योगदान पर प्राप्त आंकड़ों से सुझाव मिलता है कि उच्च शिक्षा का विस्तार होगा, क्योंकि व्यक्ति उच्च शिक्षा में अधिक निवेश करने के इच्छुक होंगे, और सरकारें उच्च शिक्षा क्षेत्र को समर्थन देने हेतु प्रयासरत होंगी, परंतु क्या इस क्षेत्र में छात्रों को प्रशिक्षित करने हेतु उनके पास पर्याप्त संसाधन होंगे क्या वास्तव में ऐसा है?

अगर हम 1990 में इन चार देशों में उच्च शिक्षा का अध्ययन करें तो हम पायेंगे कि ब्राजील, चीन तथा भारत में नामांकन की दरें आयु समूह के मुकाबले कम थी जबकि रूस में यह बहुत अधिक थीं। 1990 में, केवल 12 प्रतिशत आयु समूह ने उच्च शिक्षा संस्थानों में दाखिला लिया जबकि भारत में यह 10 प्रतिशत से कम था। चीन, एक अपवाद था जहां केवल 3–4 प्रतिशत ने उच्च शिक्षा में नामांकन कराया। इसका कारण चीन में उत्तर–माओवादी नेतृत्व में विद्वानों के प्रति विद्वेष का परिणाम था जो सांस्कृतिक क्रांति तथा तियानमेन स्क्वायर में हुई घटनाओं से पुनः स्थापित हो गया था। दूसरी ओर रूस ने सोवियत नेतृत्व द्वारा उत्तर–माध्यमिक शिक्षा में किये गये भारी निवेश को प्राप्त किया जिसमें 1989 में आयु–समूह के 40 प्रतिशत लोगों ने उच्च शिक्षा में दाखिला लिया था।

नामांकन का विस्तार

उच्च शिक्षा का विस्तार करने हेतु राज्यों को पहले माध्यमिक शिक्षा में निवेश करना होगा। ब्राजील और भारत तथा चीन और रूस के बीच महत्वपूर्ण अंतर साम्यवादी सरकारों द्वारा जन–समूह की शिक्षा में भारी निवेश था। क्रांतियों के समय उनके पास बड़ी संख्या में अनपढ़ किसानों की जनसंख्या थी। बाद में एक ही युग में किसान वर्ग, विशेषतौर पर युवा किसानों ने साक्षरता प्राप्त की। 1980 के दशक तक रूस के 80 प्रतिशत से अधिक युवा और चीन के 40 प्रतिशत युवा माध्यमिक विद्यालयों के अंदर

थे। ब्राजील तथा भारत इन से काफी पिछड़ गये। ब्राजील – जिसके पास प्रति व्यक्ति आय की दर अधिक थी, ब्राजील ने 1990 में माध्यमिक शिक्षा की पहुंच को सुगम बनाने का काम किया। परंतु तालिका–3 दर्शाती है कि भारत में वर्ष 2003 में माध्यमिक शिक्षा में सकल नामांकन अनुपात केवल 50 प्रतिशत ही था। (महिलाओं के संदर्भ में केवल 40 प्रतिशत)।

तालिका–3

देशों के अनुसार सकल माध्यमिक तथा तृतीयक स्तरीय नामांकन दर 1970–2003 (प्रतिशत)

देश	1970		1985		2001		2003	
	माध्यमिक	उच्च	माध्यमिक	उच्च	माध्यमिक	उच्च	माध्यमिक	उच्च
ब्राजील	26	5	35	11	108[b]	18	109[b]	21
चीन	30	1	40	3	62	10	70	16
भारत			38	6	48	10	52	12
रूसी फेडरेशन				45–50[a]			93	69

स्रोत : विश्व बैंक संकेतक {http://devdata.worldbank.org/dataonline/]

टिप्पणी : a) लेखक द्वारा आकलित b) निवल नामांकन दर = 75 प्रतिशत (ब्लूम, 2006, परिशिष्ट 'A', तालिका–1)

पिछले पंद्रह वर्षों में ब्रिक देशों में उच्च शिक्षा का विस्तार हुआ है, विशेषतौर पर चीन तथा ब्राजील में। ब्राजील की उच्च शिक्षा में आयु समूह के 20 प्रतिशत बच्चे सम्मिलित हैं। यह 80 के दशक के मध्य से 11 प्रतिशत अधिक है। रूस में 1989 से 1993–94 के बीच अन्तर माध्यमिक शिक्षा संस्थानों में छात्रों का नामांकन 30 लाख से घटकर 26 लाख हो गया और इसके बाद वर्ष 2000 में बढ़कर 47 लाख हो गया। (दुरगोव, 2001, चित्र 1)। चूंकि आयु समूह का आकार इस अवधि में महत्वपूर्ण रूप से परिवर्तित नहीं हुआ, यह सकल नामांकन में एक बड़ी वृद्धि का प्रतिनिधित्व करता है। चीन का सकल नामांकन अनुपात आठ वर्षों में महत्वपूर्ण रूप से 4 प्रतिशत से बढ़कर 16 प्रतिशत हो गया। भारत में यह वृद्धि साधारण ही रही। यह 1990 में 8 प्रतिशत से बढ़कर 2003 में 12 प्रतिशत हो गई। परंतु, इसका अर्थ यह भी था कि 42 लाख छात्र

उच्च शिक्षा संस्थानों में नामांकित हुये। (कपूर तथा मेहता, 2004)[4]

उच्च शिक्षा श्रमिकों के स्टॉक तथा आर्थिक विकास के संबंधों की हमारी चर्चा के मद्देनजर यह दिलचस्प है कि चीन बहुत कम उच्च स्तर की मानव पूंजी के होते हुए भी 1990 के दशक में लगातार तीव्र विकास की राह पर चलता रहा। ब्राजील भी 1970, 1980 के मध्य तथा 1990 में तीव्र विकास की राह पर चला जबकि उसके पास भी उच्च शिक्षा प्राप्त श्रमिकों का स्टाक कम था। दूसरी तरफ, रूस अपनी उच्च शिक्षा प्राप्त श्रमिक फौज के साथ भी 1970 तथा 1980 के दशक में आर्थिक विकास को बरकरार नहीं रख पाया और आज रूस का आर्थिक विकास केवल इस पर निर्भर है कि यह देश प्राकृतिक संसाधनों के मामले में बहुत धनी है और अन्य प्राकृतिक संसाधनोंयुक्त धनी देशों की तुलना में इसके पास वर्षों से शिक्षा में निवेशित मानव संसाधन की फौज़ है। जैसा कि बेल्टन फ्लायशर ने सुझाया है कि (फ्लायशर 2002) चीन से हमें यह पाठ पढ़ना चाहिए कि आर्थिक विकास न केवल उच्च स्तर मानव पूंजी से जुड़ा है, बल्कि और अच्छी शिक्षित मानव संसाधन शक्ति के साथ चीन अधिक आर्थिक विकास प्राप्त कर सकता था और अब, जब चीन अपनी उच्च शिक्षा का विस्तार कर रहा है, यह पहले के मुकाबले में अधिक आर्थिक विकास दर प्राप्त करेगा। इसी प्रकार ब्राजील ने भी उच्च शिक्षित मानव पूंजी में श्रम निवेश किया और भारत ने भी। समष्टिगत और व्यष्टिगत दोनों अर्थशास्त्र सुझाते हैं कि ब्राजील की उच्च शिक्षा में विस्तार आर्थिक विकास की प्रगति में तेजी लायेगा। हालांकि भारत के संदर्भ में यह स्पष्ट नहीं है कि उच्च शिक्षा में कम निवेश क्या आर्थिक विकास पर नकारात्मक प्रभाव डालेगा, क्योंकि पिछले दस वर्षों के मुकाबले, उच्च उत्पादकता वाले क्षेत्रों में उच्च शिक्षित भारतीयों के लिये विकल्प प्रासंकिग रूप से कम थे और अधिकांश उन नौकरियों की प्रतीक्षा कर रहे थे जो उन्हें सरकारी नौकरशाह बनाती।

90 लाख छात्रों तथा बहुत बड़ी संख्या में वैज्ञानिकों तथा इंजीनियर जो कि प्रतिवर्ष प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं, के बावजूद किसी भी सूरत में, ब्रिक देशों में तृतीयक क्षेत्र में

[4] कपूर तथा मेहता के अनुसार (2004) भारत में उच्च शिक्षा संस्थानों में आयु-समूह 2002-03 में केवल 7 प्रतिशत था। तिलक 2007 ने भी भारत में उच्च शिक्षा में आयु-समूह 2003 में 8 प्रतिशत बताया है। इसलिए विश्व बैंक के तालिका-3 में दिये गये आंकड़ों में आकलन संभवत: अधिक है।

भारतीयों का अनुपात सबसे कम था। भारत की तकनीकी मानव पूंजी उतनी विशाल नहीं है जैसाकि लगता है, तिलक (2007) के अनुसार:

> *''भारत के पास वैज्ञानिक तथा तकनीकी मानव संसाधन का विशाल भंडार है, जिसमें वैज्ञानिक तथा इंजीनियर्स सम्मिलित हैं। परन्तु विश्व में तीसरे सबसे बड़े वैज्ञानिक तथा तकनीकी मानव संसाधन शक्ति होने का यह छलावा तब फूट पड़ता है अगर हम इसकी गुणवत्ता तथा उपयोग का सूक्ष्म रूप से परीक्षण करें। यह स्टॉक अर्थव्यवस्था की तुलना में इतना अधिक नहीं है। कोई भी वैज्ञानिक तथा तकनीकी मानव संसाधन की अंतर्राष्ट्रीय तुलना इस विशाल दावे को तर्क संगत सिद्ध नहीं कर पायेगी। उदाहरण के लिये प्रत्येक 10 लाख लोगों के पीछे भारत में 1990 में 130 वैज्ञानिक/इंजीनियर्स थे जबकि इसकी तुलना में दूसरे देशों में इसका प्रतिशत 10-30 गुणा ज़्यादा था। शिक्षित बेरोजगारों की संख्या में भी इनकी भागीदारी अधिक है।''*
>
> (तिलक, 2007)

उच्च शिक्षा के वित्त का बदलता स्वरूप

सभी ब्रिक देशों की अर्थव्यवस्थाओं में एक समय में उच्च शिक्षा संपूर्ण रूप से सरकार या फिर राज्य सरकार से प्राप्त सार्वजनिक निधि से संचालित थी। दूसरे शब्दों में, प्रत्येक छात्र जिसने उच्च शिक्षा संस्थान में दाखिला लिया, उसने अपनी आय तथा प्रत्यक्ष निजी व्यय के अतिरिक्त पूर्ण रूप से राज्य द्वारा अनुदान प्राप्त उत्तर-माध्यमिक शिक्षा पूरी करी।

उक्त वित्त मॉडल में उच्च शिक्षा पूर्ण रूप से सार्वजनिक वस्तु थी तथा उच्च बाह्यताएं प्राप्त कर रही थी। (इस चर्चा के लिए देखें ब्लूम तथा सेविला 2004)। इसके अतिरिक्त यह भी तर्क दिया गया कि प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षा की तरह उच्च शिक्षा (अधिक महंगी) के शुल्क की पूर्ति बाजार में निवेश को कम करेगी। इसके अतिरिक्त, चूंकि उच्च शिक्षा केवल मध्यम वर्ग तक ही सीमित है जिन्होंने अपने बच्चों को गुणवत्तायुक्त प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षा दिलवाने हेतु समय तथा पैसा निवेश किया है, इसलिये मुफ्त उच्च शिक्षा केवल एक शक्तिशाली तथा प्रखर राजनैतिक समूह व्यावसायिक वर्ग/सरकारी नौकरशाह को शांत करने के लिए थी, जो अपने बच्चों की

गतिशीलता सुनिश्चित करना चाहते थे। अंत में सभी (अर्थात कम आय वाले शहरी तथा ग्रामीण वर्ग) भी इसी मॉडल में आ गए, यह मानते हुये कि आखिरकार उनके बच्चे भी इस 'मुफ्त' की वस्तु से लाभ उठायेंगे।

आज लगभग, सभी चार देशों ने किसी न किसी तरीके से सार्वजनिक विश्वविद्यालयों में ट्यूशन शुल्क वसूली के लिये साझी लागत वसूली या फिर उच्च शिक्षा का निजीकरण होने का मौका दिया। जिस प्रकार प्रत्येक देश ने इस परिवर्तन को अपनाया और इसे होने दिया उससे उच्च शिक्षा व्यवस्था की गुणवत्ता और समता पर प्रभाव पड़ेगा।

चीन की उच्च शैक्षिक व्यवस्था 1997 के बाद परिवर्तित हुई है। इस बदलाव के निहितार्थ चीन ने साझी लागत पर अमल किया। वेनले ली, शिक्षा अर्थशास्त्र संस्थान, बीजींग विश्वविद्यालय में शोध छात्र, ने दर्शाया कि चीन में उच्च शिक्षा के वित्त की व्यवस्था 1990 के बाद से महत्वपूर्ण रूप से बदल गई। पहले यह सीधे सरकारी योगदान से संचालित थी (83 प्रतिशत) परंतु विश्वविद्यालयों से जुड़े औद्योगिक संस्थान प्राप्त राजस्व (10 प्रतिशत) से हटकर 2002 में यह 30 प्रतिशत ट्यूशन फीस तथा 50 प्रतिशत सरकार के सीधे योगदान से संचालित होने लगी (चित्र 2)।[5]

शिक्षा अर्थशास्त्र संस्थान ने मुख्यत: पूर्वी चीन में लगभग 18 उच्च शिक्षा संस्थानों के 15 हजार छात्रों का सर्वेक्षण किया (10 राष्ट्रीय तथा 8 स्थानीय)। इस अध्ययन से पता चलता है कि ट्यूशन तथा अन्य आवश्यक ''निजी'' व्यय में अंतर छात्र वर्गों में कम ही था। पांच सबसे कम आय वाले परिवारों के छात्रों ने आवश्यक निजी व्यय पर 2004 में 8600 युआन खर्च किये (ट्यूशन पर लगभग 4800 युआन) जबकि पांच उच्च आय परिवार के छात्रों ने 2600 युआन या इससे अधिक खर्च किये (ट्यूशन पर 1100 तथा खाने पर 1100, यात्रा पर 300 तथा आवास के लिए 100 युआन)

चूंकि उच्च वर्ग वाले छात्र बीजींग और शंघाई में थे, इन्होंने अधिक महंगे संस्थानों में दाखिला लिया और उच्च लागत वाली संकाय का लाभ उठाया। ट्यूशन में निजी

[5] कुछ निजी विश्वविद्यालय हैं जो उन परिवारों के बच्चों को प्रवेश दे रहे हैं; जिनके बच्चों को सार्वजनिक विश्वविद्यालयों में प्रवेश नहीं मिल पा रहा है। इन कम गुणवत्ता वाले विश्वविद्यालयों की संख्या उच्च शिक्षा के कुल संदर्भ में बहुत कम है।

व्यय में कम अंतर का निष्कर्ष यह है कि उच्च तथा कम लागत के संस्थानों तथा संकायों में ट्यूशन फीस का अंतर मामूली है। इसका अर्थ यह हुआ कि उच्च व्यय वाले शिक्षा संस्थानों एवं संकायों में सार्वजनिक व्यय अधिक था और इस प्रकार उच्च आय वर्ग के छात्रों के लिये सार्वजनिक सब्सिडी कम आय वर्ग के छात्रों की तुलना में अधिक थी।

कम आय वर्ग तथा कम कुलीन तथा कम लागत वाले विश्वविद्यालयों में प्रवेश लेने वाले निम्न आय वर्ग के छात्रों की तुलना में यह रणनीति अधिकतम आर्थिक विकास प्राप्ति हेतु तर्क संगत होती है अगर पूर्वी चीन के शहर तथा प्रांतों के उच्च आय वर्ग के छात्र अकादमिक रूप से अधिक सफल हों तथा सामाजिक (बाह्यताओं) लाभों में अपना योगदान दे पायें। अनुदान की ऐसी योजना जिसमें केवल योग्य और योग्यताओं को ही नामांकन प्राप्त हो जो उच्च बाह्यताएं प्रदान करें, को अधिक नवाचारों तथा उच्चतर आर्थिक वृद्धि में योगदान करना चाहिए। यह नवाचारों तथा आर्थिक विकास में योगदान दे पायेंगे। यह आमतौर पर माना जाता है कि कुछ क्षेत्रों – अनुसंधान विज्ञान या अध्यापन में होनहार छात्रों की निवेश बाह्यताएं वृहद हैं क्योंकि जिन गतिविधियों में छात्र संलिप्त हैं, उनसे आय से अधिक सामाजिक लाभ ज्यादा प्राप्त होता है।

चित्र-2 चीन : नियमित चीनी विश्वविद्यालयों का राजस्व ढांचा, श्रेणी द्वारा, 1990-92 (प्रतिशत)

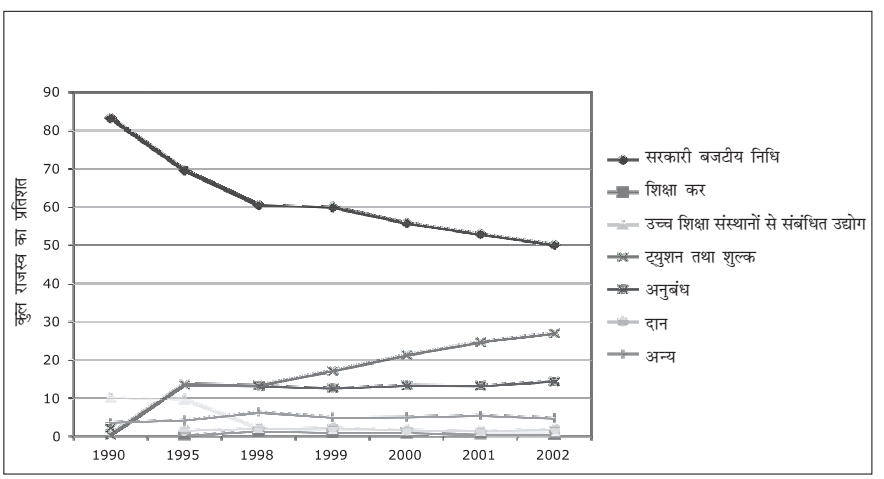

स्रोत: ली (2005)

जैसा कि चित्र-3 में दर्शाया गया है, ऐसा संभव है भी और नहीं भी। अगर उच्च आय वर्ग के विद्यार्थी ऐसे विश्वविद्यालयों और संकायों में पढ़ते हैं जहां निजी लाभ की दर उच्च है तथा बाह्यताएं कम है तो आर्थिक विकास को अधिकाधिक करने के लिये छात्र-ऋण कार्यक्रम अधिक लागत-प्रभावी होगा। बाजार पर शिक्षा ऋण की योजना शैक्षिक निवेश के लिए अधिकाधिक पूंजी बाजारों से उत्पन्न हो रही बाधाओं को तोड़ने में सहायक सिद्ध होगी परन्तु छात्रों तथा उनके परिवारों को अच्छा-खासा व्यय करना होगा।

चित्र-3

आर्थिक निवास के लिये विभिन्न संकायों तथा विश्वविद्यालयों में नामांकन वृद्धि के प्रोत्साहन हेतु वित्तीय नीतियां

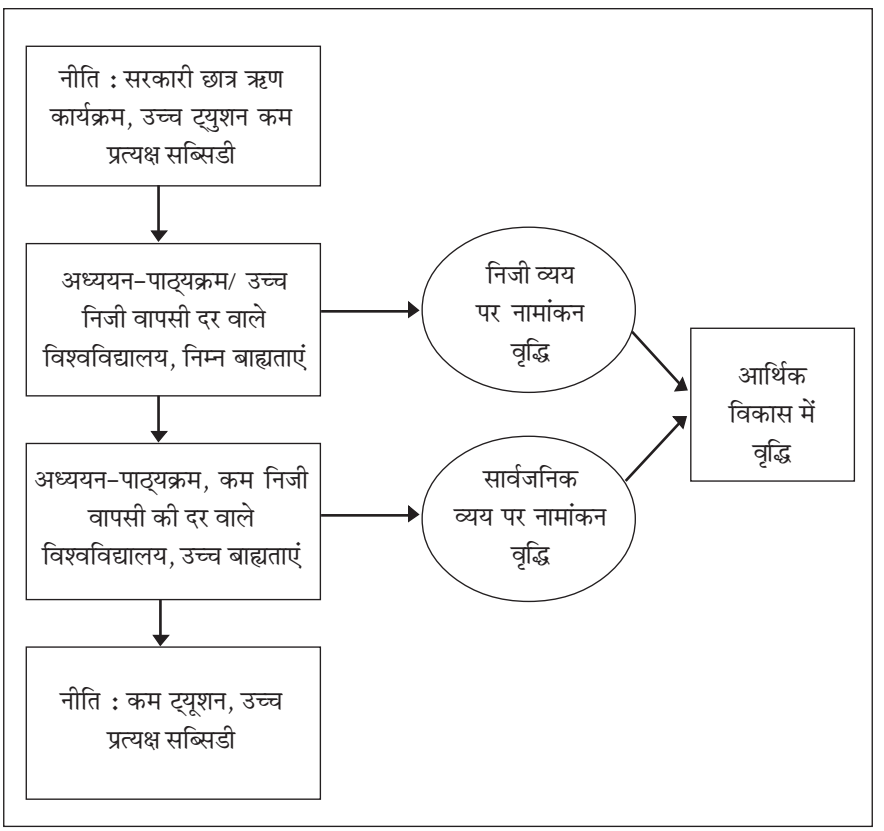

यहां ब्राजील ने एकदम विपरीत रणनीति अपनाई। उच्च शुल्क वाले विश्वविद्यालयों में प्रवेश लेने वाले मध्यम तथा उच्च मध्यम छात्रों से सीधे शुल्क में वृद्धि न करके, ब्राजील की सैन्य सरकार ने 1960 में एक उच्च शिक्षा नीति अपनाई जिसके अंतर्गत निजी विश्वविद्यालयों के विस्तार को बढ़ावा दिया जिससे कि वे छात्र जिनके अंक मुक्त सार्वजनिक विश्वविद्यालयों में प्रवेश के लिये पर्याप्त नहीं हैं, इन निजी विश्वविद्यालय में शुल्क देकर प्रवेश ले सकें।

वर्ष 2004 तक ब्राजील के उच्च शिक्षा क्षेत्र में 72 प्रतिशत छात्रों ने प्रवेश लिया। इनमें से अधिकांश में उच्च ट्यूशन शुल्क था। औसतन निजी विश्वविद्यालयों में छात्र कम आय वर्ग से आते हैं (नि:शुल्क सार्वजनिक विश्वविद्यालयों में 50 प्रतिशत छात्रों ने निजी शुल्क सहित प्राइमरी तथा माध्यमिक विद्यालयों में पढ़ाई की) जिससे कि वह अपने मनमुताबिक (अंकों तथा ग्रेड पर आधारित) किसी भी क्षेत्र में प्रवेश ले सकें। दूसरी तरफ, 1990 के दशक के शुरू में रूस में शिक्षा पर सार्वजनिक व्यय कम हो गया था और अभी तक इसकी पूर्ति नहीं हो पा रही है इसलिए निजी तथा सार्वजनिक विश्वविद्यालयों में नामांकन की दर तथा लागत बढ़ी है। परंतु चीन में निजी विश्वविद्यालयों में लागत नहीं बढ़ी, क्योंकि रूस में अधिकांश सार्वजनिक विश्वविद्यालय छात्रों को उनके प्रवेशांक और उच्च स्कूल ग्रेड के आधार पर प्रवेश देते हैं। इसके बाद ये विश्वविद्यालय दूसरे चरण के छात्रों को लेते हैं जो शुल्क अदा करना चाहते हैं। स्वभाविक है कि अधिक शुल्क अदा करने वालों को अध्ययन का वह क्षेत्र पसंद है जहां लाभ की दर उच्च हो। इस प्रकार जो छात्र निम्न निजी लाभ दर तथा उच्च बाह्यताओं की संभावना वाले क्षेत्र में अध्ययन करते हैं, उन्हें अधिक सब्सिडी मिलने की संभावना होती है। 1990 के मध्य से निजी विश्वविद्यालयों में नामांकन शून्य से वर्ष 2000 में 10 प्रतिशत हो गया (द्रुगोव, 2001, चित्र-1)। इसके अतिरिक्त वह उस क्षेत्र से जुड़ना चाहते हैं जहां निजी लाभ की दर ज़्यादा हो और छात्र शुल्क देने के लिए तैयार हों।

भारत में स्थिति भिन्न है। भारत सरकार ने केंद्र सरकार के बजट में धीरे-धीरे उच्च शिक्षा को दी जाने वाली अहमियत को कम किया (तिलक 2007, कपूर तथा मेहता, 2004)। कपूर तथा मेहता के अनुसार शिक्षा पर कुल व्यय के अनुपात में उच्च शिक्षा पर व्यय का अनुपात 1980 में 15 प्रतिशत के औसत से घटकर 1990 में 10 प्रतिशत रह

गया (पृ.9)। इससे मध्यम वर्ग निजी शिक्षा की ओर मुड़ गया।

एन.एस.एस. आंकड़ा के अनुसार, समस्त शिक्षा पर सरकारी व्यय 1983 में 80 प्रतिशत से घटकर 1999 में 67 प्रतिशत रह गया। केरल जैसे राज्यों में यह प्रतिशत और भी घट गया, 75 से 48 प्रतिशत, जबकि मध्य प्रदेश में 84 से 68 प्रतिशत। वास्तव में, पिछले 16 वर्षों में शिक्षा पर निजी व्यय 10.8 गुणा बढ़ा है जबकि गरीबों के लिये यह थोड़ा अधिक 12.8 गुणा बढ़ा है। कई छात्र जो सार्वजनिक कालेजों तथा विश्वविद्यालयों में दाखिला लेते हैं, कक्षाओं में बहुत कम उपस्थित होते हैं। इसके विपरीत छात्र व्यावसायिक आई टी प्रशिक्षण कंपनियों जैसे एन.आई.आई.टी. तथा एपटैक पर लाखों रुपये खर्च करते हैं (कपूर तथा मेहता, 2004, पृ. 5)।

निजी कालेजों तथा साथ में निजी व्यावसायिक प्रशिक्षण कार्यक्रमों में नामांकन की प्रवृत्ति के अतिरिक्त निजी प्रदाताओं द्वारा इंजीनियरिंग, वाणिज्यिक तथा चिकित्सा जैसे क्षेत्रों में निजी संस्थानों की बढ़ोतरी हुई। कपूर तथा मेहता (2007, पृ. 5–6) ने भारत के 19 राज्यों से आंकड़े निजी तथा सार्वजनिक विश्वविद्यालयों में इंजीनियरिंग तथा चिकित्सा में पढ़ रहे छात्रों का अंतर जानने के लिए एकत्र किये। उन्होंने पाया कि 1960 में निजी इंजिनियरिंग कालेज में 15 प्रतिशत सीट उपलब्ध थी तथा 2001 में 86 प्रतिशत सीटें। चिकित्सा में वर्ष 1960 के मुकाबले 1986 में यह बढ़कर 6.8 से 41 प्रतिशत हो गईं। उन्होंने यह भी आकलन किया कि वाणिज्य स्कूलों में 90 प्रतिशत सीट निजी थीं। दक्षिण में अधिक तथा बंगाल और बिहार में कम। पश्चिम बंगाल में भी आम प्रवृत्ति निजी संस्थानों में अध्यापकों को कम करने की थी जिससे उच्च शिक्षा पर कुल व्यय कम हो गया।

इस प्रकार यह ब्राजील के विपरीत था जहां विशेषतौर पर मध्यम तथा उच्च मध्यम वर्ग के छात्रों के लिये निजी शिक्षा का विस्तार किया गया, प्रासंगिक रूप से नि:शुल्क तथा समर्थन प्राप्त सार्वजनिक संस्थानों में नामांकनों के बोझ को कम करने के लिए, वहीं भारत ने सार्वजनिक (नि:शुल्क) शिक्षा व्यवस्था को वित्त के संदर्भ में बिगड़ने दिया और कुछ समय के बाद अनुसूचित जाति के लिये सकारात्मक निर्णय लिये और विश्वविद्यालयों का जनतांत्रीकरण किया। कपूर और मेहता के अनुसार इसने मध्यम वर्ग तथा निम्न वर्ग के भारतीयों को उच्च निजी उच्च शिक्षा में निवेश पर मज़बूर किया,

विशेषतौर पर उच्च लाभ की दर वाले क्षेत्रों में। इस प्रकार सार्वजनिक विश्वविद्यालय ऐसे स्थल बन गये हैं जहां विद्यार्थी कला तथा समाज विज्ञान के प्रमुख विषयों की शिक्षा पाते हैं। हालांकि अभी भी कई सार्वजनिक विश्वविद्यालय हैं जहां उच्च गुणवत्ता वाले व्यावसायिकों को प्रशिक्षण दिया जाता है, पर अब सार्वजनिक विश्वविद्यालय विशिष्ट वर्ग के शिक्षा के स्थल नहीं रहे हैं।

इनमें से कौन सी पद्धति उच्च शिक्षा के वित्त के लिये ठीक है। इसका अधिक अध्ययन किये बगैर यह कहना मुश्किल है। चीन के उच्च शिक्षा सुधार के आलोचकों का कहना है कि सरकार धनी प्रांतों में विश्वविद्यालयों को अधिक सब्सिडी दे रही है क्योंकि यहां उच्च शिक्षा में वेतन उन प्रांतों से ज़्यादा है जहां विश्वविद्यालय में छात्रों की संख्या कम है। यह भी तर्क दिया जा सकता है कि सरकार संकाय को अधिक सब्सिडी दे रही है जिनके स्नातक उच्च निजी लाभ की दर अधिक प्राप्त कर रहे हैं तथा उन संकाय और विश्वविद्यालयों को कम सब्सिडी दे रही है जहां के छात्र अधिक बाह्यताएं पैदा करते हैं, परंतु वहां निजी लाभ की दर कम है। यह मुद्दा अभी जटिल है क्योंकि चीन अभी ऐसे बाजार से संक्रमित हो रहा है जहां दिहाड़ी में अंतर उत्पादन अंतर को प्रस्तुत करता है। कुछ प्रांतों और कुछ व्यवसायों में यह संक्रमण और भी ज़्यादा है।

भारतीय व्यवस्था के आलोचकों का तर्क है कि ''निजीकरण'' सरकार के वित्त में कमी तथा सुदृढ़ रणनीति की नाकामी का परिणाम है। कुछ हद तक रूसी व्यवस्था की भी इसी के आधार पर आलोचना की जा रही है।[6] ब्राजील की उच्च शिक्षा व्यवस्था राजनैतिक परंपरा में उलझ कर रह गई है जो इसे मध्यम वर्ग को सब्सिडी देने पर मज़बूर करती है, उस वर्ग को जो उच्च तथा सामाजिक आर्थिक बाह्यताएं अधिक सृजित करेंगे। अधिकांश ब्राजीलवासी जो विश्वविद्यालय में अध्ययन कर रहे हैं, इसका शुल्क दे रहे हैं, परन्तु उनके अध्ययन की गुणवत्ता बहुत कम है। यहां यह जानना रूचिकर होगा कि सार्वजनिक विश्वविद्यालयों में नामांकित 28 प्रतिशत छात्रों के

[6] सीमा जयचंद्रन ने इस आलेख पर टिप्पणी करते हुये कहा था कि योग्य प्रोफेसरों की विश्वविद्यालयों में बहुत ही कमी है, तथा विश्वविद्यालय प्रोफेसरों का वेतन व्यावसायिक कार्मिकों के मुकाबले, विशेषतौर पर विज्ञान तथा इंजीनियरिंग के निजी क्षेत्र से कम है। निजी विश्वविद्यालय इस समस्या को सुलझाने के लिये पूर्णकालिक व्यावसायिक कार्मिकों को अंश-कालिक रूप से नियुक्त करते हैं।

मुकाबले 72 प्रतिशत छात्रों के लिये निजी लाभ की दर क्या होगी जो निजी उच्च शिक्षा संस्थानों में नामांकित हैं।

रूसी व्यवस्था आंशिक रूप से सफल लगती है, जहां सही क्षेत्र को सब्सिडी दी जा रही है। (जिनके पास निजी लाभ की दर कम है और उच्च बाह्यताएं है और जिनके लिए छात्र महंगी ट्यूशन नहीं लेना चाहते)। हालांकि यह व्यवस्था प्रभावहीन भी हो सकती है क्योंकि यह कई छात्रों (उच्च अंक द्वारा) को जो नि:शुल्क सार्वजनिक विश्वविद्यालयों में प्रवेश पाते हैं सब्सिडी प्रदान करता है विशेषतौर पर जो निम्न बाह्यताओं और उच्च निजी लाभ की दर वाले क्षेत्रों में अध्ययन करते हैं। यह सच है कि बुद्धिमान विद्यार्थी उच्च निजी लाभ वापसी की दर में बाह्यताएं पैदा करेंगे, विशेषतौर पर वर्तमान रूसी समाज में, हालांकि आवश्यक नहीं कि ऐसा ही होगा।

उच्च शिक्षा की गुणवत्ता

अब मैं सबसे आखिर में उच्च शिक्षा की 'गुणवत्ता' पर चर्चा करना चाहूंगा। इसको मापने का एक तरीका प्रति छात्र पर व्यय राशि का आकलन करना है। अगर हम केवल सरकारी बजट की चर्चा करते हैं तो यह भ्रामक भी हो सकता है, अगर निजी उच्च शिक्षा संस्थानों में छात्रों की संख्या अधिक है और सार्वजनिक विश्वविद्यालयों में ट्यूशन शुल्क अदा करते हों क्योंकि उनका व्यय उच्च शिक्षा को आवंटित सार्वजनिक बजट में नहीं गिना जायेगा। ब्राजील में, प्रति विश्वविद्यालय छात्र व्यय 1980 तथा 2000 के बीच डालर 4,000 से बढ़कर डालर 5,500 पी.पी.पी. यू.एस. डालर हो गया (विश्व बैंक संकेतक)। ऐसा लगता है कि चीन में भी प्रति छात्र व्यय बढ़ गया है– 1999 में 13,000 युआन से बढ़कर 2002 में 20,000 युआन। चीन में ट्यूशन शुल्क 17 प्रतिशत से बढ़कर 27 प्रतिशत हो गया (लेखक का आकलन वेनली ली के अनुसंधान (2005) पर आधारित है। यह भी प्रतीत होता है कि भारत में प्रति व्यक्ति व्यय 1990 में 1,000 पी.पी.पी. डालर से 2000–01 में 1,3000 पी.पी.पी. डालर हो गया। हमारे पास रूसी संघ के बारे में आंकड़ा उपलब्ध नहीं है। इस प्रकार तीन देश उच्च शिक्षा में प्रति व्यक्ति अधिक निधि का निवेश कर रहे हैं। इस प्रकार इस आधार पर, शिक्षा की गुणवत्ता ऐसी स्थिति में कम न होकर बढ़ी ही होगी।

सभी चार देशों में (जैसा कि युरोप तथा सं.रा. अमेरीका में है) उच्च शिक्षा की

गुणवत्ता संस्थानों में बहुत भिन्न-भिन्न है। यहां दो महत्वपूर्ण प्रश्न उठते हैं, पहला कि प्रत्येक देश के चोटी के 10-20 संस्थानों में प्रशिक्षण की गुणवत्ता किस प्रकार की है और इस स्तर से नीचे फिर मध्यम स्तर पर संस्थानों में शिक्षा की गुणवत्ता का स्तर कैसा है, और चोटी के संस्थानों से कितना कम है। उच्च स्तर पर गुणवत्ता के स्तर को जानना आवश्यक है क्योंकि जब यह देश विकास प्रक्रिया के औद्योगिक और निम्न स्तर सेवा चरण से बाहर निकलेंगे तो क्या यह संस्थान तीव्र विकास हेतु अहम सोच तथा कौशल एवं नवाचारों वाले छात्रों को उत्पन्न कर पायेंगे। हमने भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान की बहुत ही मुश्किल प्रवेश प्रक्रिया और उच्च स्तर की पाठ्यचर्या के बारे में सुना है। क्या ये भारतीय विश्वविद्यालयों के मेधावी छात्रों के प्रतिनिधि हैं? यह उच्च गुणवत्ता वाले प्रशिक्षण कितने सघन हैं?

क्या चीन के पास भी विज्ञान तथा इंजीनियरिंग में भी इस प्रकार का उच्च स्तर का प्रशिक्षण उपलब्ध है? ब्राजील तथा रूस में क्या स्थिति है? अगर है, तो यह व्यवस्था कितनी सघन है?

नीचे के चौथाई तथा बीच के उच्च शिक्षा संस्थानों की गुणवत्ता के बारे में पता करना आवश्यक है क्योंकि प्रत्येक देश में इन संस्थानों में बहुत अधिक संख्या में छात्र व्यावसायिक प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं, यह स्नातक इंजिनियरिंग, प्रबंधन, नौकरियां करते हैं, कुछ सरकारी नौकरी करते हैं तथा कुछ वित्त तथा चिकित्सा सेवा में काम करते हैं तथा कुछ अध्यापन में जाते हैं। अगर उन्हें बहुत ही खराब प्रशिक्षण दिया जाता है, तो वह प्राप्त शिक्षा के बावजूद बहुत ही निम्न स्तर की बाह्यताएं पैदा करेंगे कम से कम उन तीन देशों में जहां सरकारी निधि की सब्सिडी बहुत अधिक है।

एक कारण उच्च शिक्षा में लाभ की दर गिरने का एक कारण नामांकन का विस्तार होगा क्योंकि उच्च शिक्षा की गुणवत्ता व्यवस्था के वृहद होने पर बहुत तेजी से गिरती है और बीच के स्तर के संस्थानों से इसका ह्रास और भी तीव्र होता है।

इन देशों में ऐसे क्या परिवर्तन हो रहे हैं जिससे महसूस हो कि गुणवत्ता बढ़ रही है? अगर, कोई यह सोचता है कि उच्च शिक्षा का निजीकरण गुणवत्ता बढ़ायेगा तो हम यह उम्मीद करेंगे कि ब्राजील में शिक्षा की गुणवत्ता उस स्थिति के मुकाबले जहां सरकार निजी विश्वविद्यालयों का विस्तार और विस्तार के लिये शुल्क बढ़ाने की

रणनीति अपनाएगी अधिक होगी ।

ब्राजील की निजी विश्वविद्यालयों की निम्न गुणवत्ता देखते हुए यह बहुत संतोषजनक उत्तर नहीं है। इसी प्रकार निजी विश्वविद्यालयों में क्या भारत और रूस में सरकारी समर्थन का कम होना, उच्च शिक्षा की गुणवत्ता को बढ़ा पायेंगे। इसका अध्ययन होना चाहिए। यह इस बात पर निर्भर करता है कि निजी व्यवस्था किस प्रकार विकसित होती है। क्या वर्तमान प्रवृत्ति कुलीन निजी अनुसंधान विश्वविद्यालयों का निर्माण कर पायेगी या फिर यह केवल स्वामित्व वाले स्कूल बन कर रह जायेंगे जिनका उत्कृष्टता के संबंध में केवल यही दावा होगा कि वह उच्च तथा सामाजिक वर्ग के छात्रों को पढ़ाते हैं।

कुछ बेहतरीन चीनी विश्वविद्यालय स्थानीय संकाय को विभिन्न विषयों को पढ़ाने के तौर-तरीकों को सिखाने के लिये विदेशों से संकाय आमंत्रित कर रहे हैं। क्या यह व्यवहार सभी जगह है और क्या यह कारगर है? विश्वविद्यालय शिक्षा की गुणवत्ता को बढ़ाने हेतु एम.आई.टी. माड्ल के पाठ्यक्रम पर खुली पहुंच एक और प्रयास है? क्या इसका सकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है? क्या विश्वविद्यालय अपने संगठन में परिवर्तन ला रहे हैं? अगर ऐसा है तो किस प्रकार? विश्वविद्यालय अभिशासन तथा विभागीय नेतृत्व कम से कम कुछ विश्वविद्यालयों में गुणवत्ता बढ़ाने में महत्वपूर्ण कारक सिद्ध हो रहा है।

निष्कर्ष

इन देशों में उच्च शिक्षा नीतियों के मद्देनजर अनुमानित विकास को प्राप्त करने की दर क्या रहेगी? हालांकि, विकास को कई कारक प्रभावित करते हैं। इसमे देश का शासन तथा उनके संगठनात्मक ढ़ांचे की शक्ति प्रमुख है। (जिसमें न्याय व्यवस्था भी है) फिर भी उच्च शिक्षा इसमें एक बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है।

जैसा कि हमने देखा है कि अर्थशास्त्रियों ने मुख्यत: शिक्षा के मात्रात्मक पक्ष को देखा है, श्रम शक्ति में स्नातकों की संख्या - यह देखने के लिये कि क्या उच्चतम विकास के लिए अर्थव्यवस्था संसाधनों का आवंटन कर रही है। इस अर्थ में, रूस की स्थिति सबसे अच्छी है। रूस के पास वर्तमान तथा भविष्य की श्रम शक्ति के लिए उच्च शिक्षित लोगों का वृहद स्टॉक है। चीन अपनी उच्च शिक्षा को बहुत तीव्र गति से

विस्तार दे रहा है, जबकि भारत में यह गति सबसे मंद है। हालांकि कई विश्लेषकों का मानना है कि भारत के पास पर्याप्त संख्या में इंजिनियर्स तथा डाक्टर उपलब्ध हैं और सूचना आधारित विकसित सेवा अर्थव्यवस्था की ओर बढ़ते हुए उसे चीन से बढ़त हासिल है। परंतु (तिलक 2007) तथा अन्य ने इंगित किया है कि अनुपात में भारत (यहां ब्राजील भी जोड़ सकते हैं) के पास उच्च शिक्षित इंजीनियरों तथा सेवा कार्मिकों की संख्या बहुत ही कम है।

इन सभी चार देशों में उच्च शिक्षा की गुणवत्ता कुछ कुलीन संस्थानों को छोड़कर जहां विश्वविद्यालय की शिक्षा उपलब्ध है अन्यथा एक गंभीर समस्या है। इन संस्थानों में पढ़ने वाले छात्र प्रथम स्नातक डिग्री के बाद विकसित देशों में स्नातक कार्यक्रम में भाग लेते हैं और बहुत से तो वापिस जाते ही नहीं, विशेषतौर पर चीन और भारत के छात्र।

हालांकि स्नातकों की संख्या महत्वपूर्ण है परन्तु भविष्य में सोच तथा नवाचार, छात्रों में अध्यापकों द्वारा प्रदत्त शिक्षा और उच्च शिक्षा संस्थान जो इस प्रकार की शिक्षा के लिये प्रोत्साहन दें, महत्वपूर्ण हैं। क्या यह संस्थान सही दिशा में कार्य कर रहे हैं?

नीति निर्माताओं का मानना है कि निजीकरण इस मुद्दे के लिये अहम है, हालांकि इसके लिये उच्च गुणवत्तापूर्ण विश्वविद्यालयीय शिक्षा उपलब्ध कराना और सार्वजनिक अनुदान की आवश्यकता को कम करना होगा। फिर भी, निजी विश्वविद्यालय तथा व्यावसायिक विद्यालय सार्वजनिक विश्वविद्यालयों की तरह ही सूचना अर्थव्यवस्था के लिये आवश्यक उच्च स्तर की चिंतन क्षमता का विकास नहीं करेंगे।

संदर्भ

एलेन, जे. (2001): अफैक्ट आफ ए कन्ट्रीज इकोनोमिक एंड सोशल कान्टैस्ट आन द रेट्स आफ रिटर्न टू एजुकेशन – ए ग्लोबल मेटा-अनालिसिस, स्कूल आफ एजुकेशन, स्टैनफोर्ड यूनिवर्सिटी

अशोक, एच (2006): इनवैस्टिंग इन एजुकेशन इन इंडिया : इन्फेरेन्स फ्रॉम एंड एनालिसिस आफ द रेट्स आफ रिटर्न टू एजुकेशन अक्रॉस इंडियन स्टेट। स्कूल आफ एजुकेशन, स्टैनफोर्ड यूनिवर्सिटी

अवाकोव, जी. (1987): *औद्योगिक तथा तकनीकी शिक्षा विकास,* यूनेस्को, आईआईईपी

अजारियाडिस सी. और ड्राजेन ए. (1990) : थ्रैसहोल्ड एक्टरनलिटीज इन इकानोमिक डवलपमेंट,

क्वाटरली जरनल आफ इकानोमिक, 105, नं. 2, पृ. 501–26

बारो आर.जे. (1990): गवर्नमेंट स्पैंडिंग इन ए सिंपल माडल आफ इंडोजेनस ग्रोथ, *जनरल आफ पालिटिकल इकोनोमि,* जिल्द. 98, नं. 5, पृ. एस103–एस125

बारो आर.जे. एंड ली जे.डब्ल्यू. (1990): सोर्सेज आफ इकानोमिक ग्रॉथ *कार्नेगी रोचेस्टर कॉन्फ्रेंस, सिरीज आन पब्लिक पालिसी* जिल्द 40, पृ. 1–46

बारो आर.जे. एंड ली जे.डब्ल्यू. (1994): इंटरनेशनल मेजर आफ स्कूलिंग इयर्स एंड स्कूलिंग क्वालिटी, *अमेरिकन इकानोमिक रिव्यू* जिल्द 86, नं.2 पृ. 218–23

बसानिनि ए., स्कारपेटा एस. (2001): इज हूमैन कैपिटल मैटर फार ग्राथ इन ओइसीडी कन्ट्रीज, *ओइसीडी इकानोमिक डिपार्टमेंट वर्किंग पेपर्स,* नं. 282

बेनहाबिब जे. एंड स्पाईजेल एम. (1994): द रोल आफ हूमैन कैपिटल इन इकानोमिक डवलपमेंट: इविडेंस फार एग्रेगेट क्रास कन्ट्री डाटा *जरनल आफ मानीटरी इकानोमी,* जिल्द 34, पृ. 143–73

बर्थेलेमी जे.सी., डेसस एस. एंड वरौडाकिस ए. (1997): कैपिटल हूमैन, औवेचुअर एक्ट्रेचर एल क्रोइसेंस : डाक्युमेंट टेकनीक्स डे नं. 121

ब्लॉग, एम., पी.आर.जी. लायर्ड एंड एम. वुडहाल (1969): द *काज आफ ग्रेजुएट अनइम्प्लायमेंट इन इंडिया* लन्दन: एलेन लेन द पेंगुइन

ब्लॉग, एम. (1972): ''एजुकेटेड अनइम्प्लामेंट इन एशिया: ए कांट्रास्ट बिटवीन इंडिया एंड द फिलीपाइन'' द *फिलीपाइन इकानोमिक जरनल* जिल्द 11, पृ. 33–35

ब्लूम, डी. (2006): *मेजरिंग ग्लोबल एजुकेशनल प्रोग्रेस* कैम्ब्रीज, एम.ए.: अमेरिकन अकादमी आफ आर्ट्स एंड साइंसेज

ब्लूम, डी. एंड जे. सेविला (2004): शुड देअर बी जनरल सब्सिडी फार हायर एजुकेशन डवलपमेंट कन्ट्रीज, *जरनल आफ हायर एजुकेशन इन अफ्रीका,* 2(1), 137–150

ब्लूम, डी., डी. कनिंग एंड के. चान (2006): *हायर एजुकेशन एंड इकानोमिक डवलपमेंट इन अफ्रीका,* वाशिंगटन, डी.सी. विश्व बैंक अफ्रीका रीजन वर्किंग पेपर 102

बौट्रोले, सी. (2003): ''एजुकेशन क्रोजेंस एट डवलपमेंट – एन एप्रोच कम्पेरेटिव डू बेसिन ऐडिट्रेनीन एट डू सूड–एस्ट एशिटिक

कार्नाय एम. (1972): द पॉलिटिकल इकानोमी आफ एजुकेशन, इन टी. लेबेल (सं.) *एजुकेशन एंड डवलपमेंट इन लेटिन अमेरिका एंड द कैरिबियन* लॉस एंजिल्स, लेटिन अमेरिकन सेंटर

कार्नाय एम. (1995): रेट्स आफ रिटर्न टू एजुकेशन, इन द *इंटरनेशनल इंसाइक्लोपेडिया आफ एजुकेशन,* आक्सफोर्ड, यू.के.

कैस्टल एम. (1991) द यूनिवर्सल सिस्टम: इंजिन आफ डवलपमेंट इन द न्यू वर्ल्ड इकानोमी, वर्ल्ड बैंक

चेन, बी. एंड वाई. फंग (2000): डिटरमिनेंट आफ इकानोमिक ग्रॉथ इन चीन - प्राईवेट इंटरप्राइजेज, एजुकेशन, एंड ओपनैस चीन इकोनोमिक रिव्यू, 11(1), 1-15

क्रेजर (2004): *लास लेसन डे ला रिफार्म एजुकेटिव एन एल कोनो सुर लेटिनोअमेरिकानो (सं) मार्टिन कार्नोय*

डेसस, एस. (2001): हूमन कैपिटल एंड ग्रॉथ-रिकवर्ड रोल आफ एजुकेशनल सिस्टम *वर्ल्ड बैंक मिडिल-ईस्ट एंड नार्थ अफ्रीका वर्किंग पेपर सिरीज,* नं. 2

ड्रॉगो, एम. (2001): हायर एजुकेशन एक्पेंशन इन रूस - ह्वट स्टैंड विहाइंड ? मास्को, न्यू इकानोमिक स्कूल, वर्किंग पेपर बीएसपी/01/048

दुरईस्वामी, पी. (2002): चेंज इन रिटर्न इन एजुकेशन इन इंडिया 1983-1994 - बाई जेंडर, एजकोहर्ट एंड लोकेशन *इकानोमिक आफ एजुकेशन रिव्यू,* जिल्द 21(6), पृ.609-22

फ्लायशर, बी. (2002): हायर एजुकेशन इन चीन - ए ग्रॉथ पाराडॉक्स? डिपार्टमेंट आफ इकानोमिक्स, ओहिओ स्टेट युनिवर्सिटी (मिमियो)

फ्लायशर, बी. एंड चेन, जे. (1997): द कॉस्ट-नॉनकॉस्ट इन्कम गैप, प्रोडक्टीविटी एंड रीजनल इकानोमिक पालिसी इन चीन। *जरनल आफ कंपेरेटिव इकानोमिक,* 25, 220-36

फ्लायशर, बी.एम. एंड यांग, डी.टी. (2004): चीन लेबर मार्केट *इन एन होप (सं.) मार्केट रिफार्म इन चाइना,* स्टैनफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस

फंक एम., एंड स्ट्रलाइक, एच. (2000) ऑन इंडोजेनस ग्राथ विद फिजीकल कैपीटल, हूमैन कैपिटल एंड प्रोडक्ट वैरिटी, *यूरोपियन इकानोमिक रिव्यू,* जिल्द 44, पीपी 491-515.

गोयल, एस.सी. (1975): *एजुकेशन एंड इकानोमिक ग्राथ* दिल्ली: मैकमिलन

हैनेमन, एस.पी. (1996): द क्वालिटी आफ एजुकेशन इन मेना, डब्ल्यू बी

होसैन, एस.आई. (1997): मेकिंग एजुकेशन इन चीन इक्वीटेबल एंड एफिसिएंट, वाशिंगटन डीसी: वर्ल्ड बैंक चीन एंड मंगोलिया डिपार्टमेंट, पालिसी रिसर्च पेपर 1814

इस्लाम, एन (1995): ग्राथ एम्प्रीक्स-ए पैनल डाटा एप्रोच। *जरनल आफ इकानोमिक* जिल्द 110, पृ. 1127-70

जडसन, आर (1995): डू लो हूमन कैपिटल कोइफिसैंट मेक सैंस? ए पजल एंड सम अन्सर फेडरल रिसर्च बोर्ड वर्किंग पेपर

कपूर डी. एंड मेहता पी.बी. (2004) इंडियन हायर एजुकेशन रिफार्म – फ्रम हाफ-बेक्ड सोशलिज्म टू हाफ-बेक्ड कैपिटलिज्म। हावर्ड यूनिवर्सिटी सेंटर फार इंटरनेशनल डवलपमेंट, वर्किंग पेपर नं. 108, सितम्बर

नाइट, एम. लॉयजा एन. विलानूवा डी. (1993): टैस्टिंग द नियोक्लासिकल थ्योरी आफ इकानोमिक ग्राथ, ए पैनल डाटा एप्रोच *आइएमएफ स्टाफ पेपर्स,* 40(3)

कोठारी, वी.एन. (1970): डिस्पारीटिज इन रिलेटिव अर्निंग अमंग डिफरेंट कन्ट्रीज, *इकानोमिक जरनल* 80 (सितंबर): 605-16

किरीयाकाउ, जी. (1991): लेवल एंड ग्राथ अफैक्ट आफ हूमन कैपिटल। *वर्किंग पेपर,* 91-26 सी.डब्ल्यू. स्टार सेंटर

लाउ एल., जमीसन डी, लौट एफ. (1991): एजुकेशन एंड प्रोडक्टीविटी इन डवलपिंग कन्ट्री-एन एग्रेगेट प्रोडक्शन फंक्शन एप्रोच, *वर्ल्ड बैंक डब्ल्यू पी एस 612*

ली एच. (2001): इकानोमिक ट्रांजिशन एंड रिटर्न टू एजुकेशन इन चाईना स्कूल आफ इकानोमिक्स, जार्जिया इंस्टीट्यूट आफ टैक्नोलॉजी

ली डब्ल्यू (2005): प्राइवेट एक्पेंडीचर फैमिली कंट्रब्यूशन एंड फाइनेंशियल एड इन चाईना हायर एजुकेशन। बीजिंग यूनिवर्सिटी

लुकास, आर.ई. (1988): आन द मैकनिक आफ इकानोमिक डवलपमेंट *जरनल आफ मानीटरी इकानोमिक* 22(1): 3-42

मैकमाहोन डब्ल्यू (1998): एजुकेशन एंड ग्रॉथ इन ईस्ट एशिया, *इकानोमिक आफ एजुकेशन रिव्यू,* जिल्द 17, नं. 2, पृ.159-72

मांकिव जी., रोमर डी., (1992): ए कंट्रीब्युशन टू द एंप्रीक्स आफ इकानोमिक ग्रॉथ *जरनल आफ इकानोमिक,* जिल्द 107, पृ. 407-37

नाला-गॉडन, ए.एम. (1967): इंवैस्टमेंट इन एजुकेशन इन इंडिया, *जरनल आफ ह्यूमन रिसोंसेज,* 2(3) (समर): 347-58

पंडित, एच.एन. (1972): इफैक्टिवनैस एंड फाइनेंसिंग आफ इंवैस्टमेंट इन एजुकेशन इन इंडिया 1950-51 टू 1965-66। दिल्ली यूनिवर्सिटी

प्रिटचेट एल. (1996): ह्वैर एज आल द एजुकेशन गौन, *वर्ल्ड बैंक वर्किंग पेपर* नं. 1581

रोमर पी. (1990): इंडोजेनस टैक्नॉलॉजी चेंज *जरनल आफ पालिटिकल इकानोमी,* 98(5), पृ. एस71-102

श्यारोपॉलस जी., (1973): *रिटर्न टू एजुकेशन-एन इंटरनेशनल कंप्रीजन* सेन फ्रांसिस्का सीए, जोस्से-बास

श्यारोपॉलस जी., (1993): रिटर्न टू इंवैस्टमेंट इन एजुकेशन-ए ग्लोबल अपडेट *वर्ल्ड बैंक पालिसी रिसर्च वर्किंग पेपर* नं. 1067

राव, एम.जे. एंड आर.सी. दत्ता (1989): रेट्स आफ रिटर्न इन द इंडियन प्राइवेट सैक्टर *इकानोमिक लेटर्स,* 30, 373-378

रीमासेवस्कैया, एन.एम. एंड ओ.ए. किसलिट्सयना (2004): इनइक्वालिटी आफ इंकम इन कंट्री दैट हैव ए ट्रांजिशन इकानोमी *सोशियोलॉजीकल रिसर्च,* 43(3), 75-84

शार्टलिज, आर.एल. जू.(1973): द इंप्लॉयमेंट एंड अर्निंग आफ एग्रीकल्चर ग्रेजुएट इन इंडिया: ए बेनिफिट-कॉस्ट केस स्टडी आफ जी.बी. पंत कॉलेज आफ एग्रीकल्चर एंड टैक्नॉलॉजी,'' कॉर्नेल यूनिवर्सिटी

सोरनसेन ए., (1999): आर एंड डी, लर्निंग एंड फेज आफ इकानोमिक ग्रॉथ, जरनल आफ इकानोमिक ग्रॉथ, जिल्द 4, पृ. 429-445

तिलक, जे.बी.जी. (1987): *इकॉनोमिक्स आफ इनइक्वालिटी इन एजुकेशन* नई दिल्ली: सेज

तिलक, जे.बी.जी. (2003): हायर एजुकेशन एंड डवलपमेंट *इन द हैंडबुक आन एजुकेशनल रिसर्च इन द एशिया पैसिफिक रीजन* (सं. जे.पी. क्लीव एंड रयो वटंवे)

तिलक, जे.बी.जी. (2007): पोस्ट-एलिमेंट्री एजुकेशन, पॉवर्टी, एंड डवलपमेंट इन इंडिया *इंटरनेशनल जरनल आफ एजुकेशनल डवलपमेंट,* 27 (जुलाई): 435-45

विल्शन, डोमिनिक एंड रूपा पुरुषोतमन (2003): ड्रीमिंग विद ब्रिक: द पाथ टू 2050 गोल्डमैन सैक, *ग्लोबल इकॉनोमिक,* पेपर नं. 99 (अक्टूबर 1)

वर्ल्ड बैंक (2000): हायर एजुकेशन इन डवलपिंग कंट्री: पेरिल एंड प्रोमिस वाशिंगटन डी.सी. : वर्ल्ड बैंक

यांग, डी. (2006): वेजेज एंड रिटर्न टू एजुकेशन इन चायनीज सिटी स्टैनफोर्ड सेंटर फार इंटरनेशनल डवलपमेंट, वर्किंग पेपर नं. 271, फरवरी

(जर्नल आफ एजुकेशनल प्लानिंग एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन,
वर्ष-21 अंक-3 जुलाई 2007 से साभार)

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 14, अंक 3, दिसंबर 2007

शिक्षा का समाजशास्त्रीय विश्लेषण

नरेश प्रसाद भोक्ता*

सारांश

शिक्षा का विकास समाज के द्वारा होता है। साथ ही शिक्षा समाज की संरचना को निश्चित स्वरूप भी प्रदान करती है। एक प्रभावशाली सामाजिक शक्ति के रूप में शिक्षा को दो महत्वपूर्ण कार्य करने होते हैं: सामाजिक नियन्त्रण एवं सामाजिक परिवर्तन। प्रथम कार्य का सम्पादन शिक्षा सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों का संरक्षण करके करती है, तथा द्वितीय कार्य ऐसी शक्तियों एवं विचारों को जन्म दे करके करती है जिनमें सामाजिक परिवर्तन की क्षमता हो। यह आलेख शिक्षा के सामाजिक कार्यों का विश्लेषण दो महत्वपूर्ण समाजशास्त्रीय विचारधाराओं -सहमति का सिद्धांत एवं संघर्ष का सिद्धांत - के आलोक में करती है। साथ ही इन दो परस्पर विरोधी विचारधाराओं के आधार पर भारतीय शिक्षा व्यवस्था का मूल्यांकन भी करती है।

शिक्षा समाज में कार्य करती है और सामज के लिए कार्य करती है। यह उन सामाजिक शक्तियों में से एक है जो समाज की संरचना को स्वरूप प्रदान करती है। साथ ही शिक्षा व्यवस्था भी सामाजिक संरचना से निर्धारित होती है। एक महत्वपूर्ण सामाजिक अभिकरण के रूप में शिक्षा अन्य सामाजिक, राजनीतिक संस्थाओं, जैसे– परिवार, कुटुम्ब (किनशिप), राजनीतिक एवं धार्मिक संस्थाओं आदि से अन्तर्क्रिया करती है। इस प्रक्रिया में शिक्षा व्यवस्था न केवल अनेक प्रचलित सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों को सुरक्षित रखती है, साथ ही साथ नये मूल्यों को विकसित करती है तथा विचारों एवं संस्थाओं के रूप में नयी शक्तियों को पैदा करती है जिनमें सामाजिक संरचना में परिवर्तन लाने की क्षमता होती है। इस तरह से शिक्षा समाज द्वारा उत्पन्न की जाती

* शिक्षा शास्त्र विभाग, दीन दयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर-273009

है, साथ ही यह सामाजिक परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण अभिकरण है।

मानव की दो महत्वपूर्ण विशेषताएं हैं जो उसे अन्य प्राणियों से अलग करती है: (1) मानव अन्य मानवों के साथ जीवन एवं संस्कृति जीता है। दूसरे शब्दों में वह समाज में रहता है; (2) मानव की दूसरी विशेषता है कि उसका अधिकांश व्यवहार सीखा हुआ या अर्जित है, जन्मजात नहीं। समाजीकरण की प्रक्रिया के द्वारा मानव सामजिक समूह में रहना चाहता है, उसकी सामाजिक एवं आर्थिक प्रक्रियाओं में भागीदारी करना चाहता है। समाजीकरण की प्रक्रिया द्वारा नई पीढ़ी को समाज अपनी सामाजिक मान्यताओं, परम्पराओ, मूल्यों तथा व्यवहार प्रक्रिया के अनुरूप ढालने का प्रयास करता है, इसके द्वारा समाज अपने अस्तित्व को तो बचाता ही है साथ ही निरन्तरता को भी बनाये रखता है। शिक्षा समाजीकरण का एक प्रभावशाली अभिकरण है।

उपर्युक्त विवेचना से दो महत्वपूर्ण तथ्य उभरते हैं–

1. शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है, तथा
2. शिक्षा समाजीकरण की प्रक्रिया है।

जब हम कहते हैं 'शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है' तो इसका तात्पर्य है–

(1) शिक्षा समाज में उत्पन्न होती है अत: वह उस समाज से प्रभावित होती है जिसमें वह कार्य करती है।

(2) सामाजिक संदर्भ स्वयं सिखाता है।

(3) स्कूल एक महत्वपूर्ण सामाजिक संस्था है जो शिक्षा देती है। इसकी भूमिका अन्य सामाजिक संस्थाओं से प्रभावित होती है।

(4) शिक्षा स्वयं एक सामाजिक शक्ति है जो समाज को निश्चत ही प्रभावित करती है।

(5) शिक्षा की एक सामाजिक भूमिका है जो भावी समाज को दिशा प्रदान करती है।

जब हम यह कहते हैं कि 'शिक्षा समाजीकरण की प्रक्रिया है' तो इसका तात्पर्य है–

(अ) सामाजिक अन्तर्क्रिया से शिक्षा मिलती है।

(ब) यह मात्र शिक्षण से अधिक है।

(स) आदमी अगर कभी भी शिक्षण संस्था में प्रवेश न ले तब भी वह कुछ हद तक शिक्षा प्राप्त करता है।

(द) औपचारिक शिक्षा एक पूर्व निर्धारित उद्देश्य के साथ निश्चित दिशा में समाजीकरण है।

किसी समाज या देश की शिक्षा व्यवस्था एक साथ कुछ हद तक दो विरोधाभासी, सामाजिक उद्देश्यों की प्राप्ति का प्रयास करती है- पहला, परम्परा की निरन्तरता को बनाये रखना तथा दूसरा, परिवर्तन की प्रक्रिया को प्रारम्भ करना। शिक्षा के इन दो विरोधाभासी कार्यों की प्रकृति तथा इसका विस्तृत सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक परिवेश से संबंध को समझने हेतु समाजशास्त्रियों ने दो प्रमुख वैचारिक दृष्टिकोणों को विकसित किया है-

(क) सहमति (कॉनसेन्सस)का सिद्धांत तथा

(ख) संघर्ष (कॉनफ्लिक्ट) का सिद्धांत

सहमति का सिद्धांत

सहमति के सिद्धांत के अनुसार प्रत्येक समाज की एक संस्कृति होती है जिसमें मूल्य एवं मानदंड समाहित होते हैं। प्रत्येक समाज में कतिपय मूल्यों एवं मानदंडों पर सामान्यत: सहमति होती है। मूल्य इस तथ्य को परिभाषित करता है कि कौन से कार्य करने योग्य है और कौन से अकरणीय हैं। यद्यपि कुछ लोग मूल्यों और आदर्शों को इसलिए स्वीकार कर लेते हैं कि वे दूसरों के निंदा के पात्र नहीं बनना चाहते हैं। पर बड़ी संख्या में लोग समाज द्वारा स्वीकृत मूल्यों एवं जीवन पद्धति को सही मानते हैं, क्योंकि समाजीकीरण की प्रक्रिया के दौर में इन मूल्यों एवं जीवन पद्धति को ये आत्मसात कर लेते हैं। वे अपनी भूमिका से संबंधित अपेक्षाओं को पूरा करते हैं-परिणामत: सामाजिक संस्थाएं प्रभावशाली ढंग से कार्य करती हैं। फ्रांस के प्रमुख समाजशास्त्री दुर्खिम (1956) की दृष्टि में शिक्षा का सर्वप्रमुख कार्य समाज के मूल्यों एवं मानदंडों को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तान्तरित करना है। इनके अनुसार समाज का अस्तित्व तभी बना रह सकता है जब तक उसके सदस्यों में पर्याप्त समरूपता हो। शिक्षा व्यवस्था प्रारम्भ से ही उस समरूपता का विकास करने का प्रयास करती है जिसकी मांग सामाजिक जीवन करता है।

दुर्खिम के अनुसार आधुनिक समाजों में स्कूल वह कार्य करता है जो परिवार या मित्र मंडली (पीयरग्रुप) करने में समर्थ नहीं होता है। परिवार की सदस्यता रक्त संबंध पर आधारित होती है तथा मित्र मंडली व्यक्तिगत पसंद पर। लेकिन समाज की सदस्यता न तो रक्त संबंध पर आधारित होती है न तो व्यक्तिगत पसंद पर। समाज के सदस्य के रूप में व्यक्ति को उन सबसे सामंजस्य स्थापित करना होता है जो न तो उसके परिवार के सदस्य हैं और न मित्र। विद्यालय ऐसा अवसर प्रदान करता है। जहां विभिन्न तरह के व्यक्तियों से सामंजस्य स्थापित करने की क्षमता का विकास प्रारंभ से ही होता है।

सहमति का सिद्धांत समाज एवं मानव-शरीर की कार्य-प्रणाली को समान पाता है – सभी अंग एक दूसरे से जुड़े हुए हैं, एक परिवर्तन या गति दूसरे को प्रभावित करता है। विभिन्न अंग एक दूसरे से स्वतंत्र या संघर्षरत नहीं हो सकते। यह विचारधारा शिक्षा को एक सामाजिक उपव्यवस्था (सोशल सबसिस्टम) मानता है जो अन्य सामाजिक उपव्यवस्थाओं से अन्त:क्रिया कर समाज को स्थायित्व प्रदान करता है। प्रसिद्ध अमेरिकी समाजशास्त्री टालकट पारसन्स (1959) ने अपने बहुचर्चित लेख 'दि स्कूल क्लास ऐज ए शोसल सिस्टम' में लिखा है कि एक सामाजिक व्यवस्था के रूप में स्कूल एक साथ चार कार्यों को निष्पादित करता है:

(1) बच्चे को परिवार के अति सुरक्षित वातावरण से मुक्त करना।

(2) परिवार में उपलब्ध मूल्यों एवं मानदंडों से उच्च स्तर के सामाजिक मूल्यों एवं मानदंडों को सिखाना या आत्मसात कराना।

(3) मानव संसाधन का भावी भूमिका हेतु चयन कर विनियोजित करना।

(4) वास्तविक उपलब्धि के आधार पर बच्चों का वर्गीकरण करना।

सहमति के सिद्धांत के प्रतिपादक इस बात में विश्वास करते हैं कि सामाजिक व्यवस्था की आवश्यकताओं तथा व्यक्ति की आवश्यकताओं में मूलभूत समानता है, जो एक के लिए अच्छा है वह दूसरे के लिए भी अच्छा है। ये सामाजिक व्यवस्था में स्थायित्व, सहयोग एवं सामंजस्य को महत्वपूर्ण समझते हैं। अत: वे स्थापित सामाजिक संस्थाओं को अनिवार्य एवं अपरिहार्य मानते हैं।

संघर्ष के सिद्धांत

संघर्ष के सिद्धांत के समर्थकों का मानना है कि समाज का अस्तित्व है क्योंकि वह व्यक्ति के हितों या स्वार्थों को पूरा करता है। लेकिन ये स्वार्थ या हित समाज के विभिन्न समूहों के लिए समान नहीं होते हैं। सभी समूहों की समान पहुँच समाज के महत्वपूर्ण साधनों जैसे सम्पत्ति, शक्ति, ज्ञान आदि तक नहीं होती है। एक समूह के विभिन्न सदस्यों के बीच सहमति होती है क्योंकि उस समूह के व्यक्तियों के हित समान होते हैं। प्रभावशाली समूह अपने प्रभुत्व एवं स्वामित्व को बनाए रखने हेतु कोई परिवर्तन नहीं चाहता है। इस असमान सामाजिक संतुलन को बनाए रखने हेतु यह प्रभावशाली समूह अपने मूल्यों को जबरन या झूठे प्रलोभन द्वारा शेष समाज पर लादता है। परम्परागत शास्त्रीय मार्क्सवादियों के अनुसार शिक्षा प्रभवशाली वर्ग द्वारा अपने मूल्यों को लादने को तर्कसंगत एवं न्यायसंगत ठहराने का साधन है। प्रसिद्ध मार्क्सवादी विचारक अल्थयुसर (1977) ने शिक्षा व्यवस्था को 'डोमिनेन्ट आइडियोलोजिकल स्टेट अपरेट्स' (महत्वपूर्ण विचारात्मक राज्य-अभिकरण)कहा है। इनका मानना है कि स्कूल ज्ञान एवं कौशल देने के साथ विद्यार्थियों में शासक वर्ग के मूल्यों की भी भरता है। अल्थयुसर आगे कहते हैं कि इस तरह से ''मानवश्रम का पुनर्रुत्पादन न केवल कौशलों का पुनर्रुत्पादन करता है वरन् स्थापित व्यवस्था के नियमों के प्रति भी समर्पण के भाव का पुनर्रुत्पादन करता है।'' इस विचारधारा का महत्वपूर्ण तर्क है कि स्कूल पूँजीवादी व्यवस्था को शक्ति प्रदान करने का साधन है क्योंकि पूँजीवादी अर्थव्यवस्था को स्कूल आज्ञाकारी श्रमिक प्रदान करता है। स्कूल के प्रभावी मूल्य रट कर सीखना, अनुशासन, आज्ञापालन आदि बच्चों को पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के लिए भावी श्रमिक के रूप में तैयार करते हैं।

बाउल्स एवं गिन्टिस (1975) जैसे समाजशास्त्री पूँजीवादी सामाजिक संरचना एवं विद्यालय की संरचना में काफी समानता पाते हैं। श्रमिकों से उम्मीद की जाती है कि वे नम्र हों एवं आज्ञापालन के लिए तत्पर रहें। इसी तरह की उम्मीद स्कूल में विद्यार्थियों से की जाती है। अधिकांश अध्यापक मध्यम वर्ग से आते हैं और वे विद्यार्थियों में मध्यवर्गीय मूल्य भरना चाहते हैं। छात्रों को सामाजिक संरचना के अनुरूप बनाने हेतु अध्यापक प्राय: शारीरिक एवं मानसिक दंड देते हैं या कम अंक प्रदान करते हैं।

अनेक प्रगतिशील विचारक शिक्षा के द्वारा सामाजिक संरचना के पुनर्रुत्पादन के सिद्धांत का खण्डन करते हैं। वे मानते हैं कि प्रजातांत्रिक वातावरण में सीखने एवं

सिखाने वालों के मध्य सही संवाद आलोचनात्मक सजगता को विकसित कर सकता है। यह आलोचनात्मक सजगता दमितों को शोषकों एवं शोषितों के बीच के असमान संबंध का अहसास कराता है। यही अहसास दमितों को शोषण चक्र को बनाए रखने वाली सामाजिक संरचना को समाप्त करने के लिए प्रेरित करता है। इस तरह से पाउलो फ्रेयरे (1970) जैसे क्रांतिकारी शिक्षाशास्त्री के हाथों शिक्षा स्वतंत्रता का अभ्यास (प्रेक्टिस ऑफ फ्रीडम) बन जाता है- जिसके द्वारा स्त्री एवं पुरुष वास्तविकता को रचनात्मक एवं आलोचनात्मक ढंग से समझते हुए शोषण करने वाले असमान संबंधों पर आधारित सामाजिक संरचना को समाप्त करने का महत्वपूर्ण कार्य करते हैं।

भारतीय संदर्भ

बड़ी संख्या में समाजशास्त्री, शिक्षाशास्त्री एवं योजना निर्माता, विशेषत: विकासशील देशों के संदर्भ में, शिक्षा को सामाजिक परिवर्तन का महत्वपूर्ण अभिकरण मानते हैं। उदाहरण के रूप में तृतीय पंचवर्षीय योजना में शिक्षा को 'द्रूतगति से आर्थिक विकास, तकनीकी प्रगति तथा स्वतंत्रता, सामाजिक न्याय एवं समान अवसर के सिद्धांत पर आधारित समाज के निर्माण में सबसे महत्वपूर्ण कारक' कहा गया। शिक्षा आयोग (1964-66) ने इसी भाव को और अधिक दृढ़ता से रखा – ''बड़े स्तर पर सामाजिक परिवर्तन हेतु एक ओर एकमात्र अभिकरण है-शिक्षा'' (कोठारी, 1970:78)। इस आयोग के प्रतिवेदन में आगे कहा गया : ''आवश्यकता है शिक्षा में क्रांति की जो कि बहुप्रतीक्षित सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक क्रांति की शुरूआत करने में सक्षम होगा।'' इस प्रकार यह स्पष्ट है कि भारतीय शिक्षाशास्त्री एवं योजना निर्माता मानते हैं कि शिक्षा समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन लाने में सक्षम है। लेकिन वास्तव में अब तक शिक्षा इन पवित्र उद्देश्यों को प्राप्त करने में न केवल असफल रही है वरन् विषमता पर आधारित सामाजिक संबंधों को बनाये रखने में सहायक सिद्ध हुई है।

भारतीय संविधान सबों के लिए अवसर की समानता का वचन देता है। सरकारी योजनाएं, नीतियाँ एवं कार्यक्रम न केवल साक्षरता बढ़ाने की घोषणा करते हैं वरन् 6 से 14 वर्ष के आयु वर्ग के सभी बच्चों को प्रारंभिक शिक्षा को मौलिक अधिकार के रूप में प्रदान करने हेतु वचनवद्ध है। मानव संसाधन के विकास हेतु शिक्षा में किया गया व्यय लाभप्रद विनियोग माना गया है। सरकार स्वीकार करती है कि आर्थिक विकास हेतु मानव संसाधन का विकास अनिवार्य है। सरकार ने दलितों की स्थिति में सुधार के लिए

अनेक धनात्मक कदम उठाये हैं ताकि विषमता पर आधारित समाज को समता मूलक बनाया जा सके। सामाजिक प्रगति एवं गतिशीलता हेतु शैक्षिक अवसर की समानता को काफी महत्वपूर्ण माना गया है। अत: ऊर्ध्वाधर सामाजिक गतिशीलता हेतु शैक्षिक अवसर की समानता पर बहुत अधिक विश्वास किया गया है क्योंकि शिक्षा के द्वारा ही वास्तविक गतिशीलता एवं परिवर्तन संभव है। यह सब मूलभूत संवैधानिक मूल्यों, स्वतंत्रता, समानता एवं न्याय को प्रजातांत्रिक ढंग से प्राप्त करने के उद्देश्य के अनुरूप है।

लेकिन शिक्षा के समाज पर पड़ने वाले प्रभाव का विश्लेषण करने से स्पष्ट होता है कि शैक्षिक अवसर सबों के लिए न तो समान है न सबों के लिए खुला है। ऐतिहासिक विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि अंग्रेजों द्वारा शुरू की गयी शिक्षा व्यवस्था प्रारम्भ से ही असमानता पर आधारित थी। स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत भारत में शिक्षा के क्षेत्र में अभूतपूर्व प्रगति हुई- शैक्षिक संस्थाओं की संख्या में भारी वृद्धि हुई। नये सामाजिक वर्गों, जैसे– ग्रामीण सम्पन्न वर्ग एवं शहरी निम्न-मध्य वर्ग आदि से भारी संख्या में विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करने लगे हैं। शिक्षा व्यवस्था में यह प्रभावशाली विस्तार भी सामाजिक एवं आर्थिक रूप से वंचित वर्ग की स्थिति में सुधार करने में असफल रही है। शिक्षा की बढ़ती मांग को पूरा करने हेतु दोहरी शिक्षा व्यवस्था का विकास किया गया है। एक तरफ तो सारी आधुनिक सुविधाओं एवं योग्य शिक्षकों से युक्त प्राइवेट स्कूल हैं तो दूसरी ओर मूलभूत सुविधाओं, जैसे– ब्लैकबोर्ड, कमरे, खेल का मैदान, पुस्तकालय आदि से भी वंचित सरकारी स्कूल हैं। इन सरकारी विद्यालयों के अध्यापकों को सरकार विभिन्न तरह के कार्यों, जैसे– मतदान, जनगणना, पोलियो ड्राप पिलाने आदि में लगा कर शैक्षिक प्रक्रिया की गंभीरता को खत्म कर देती है। इसी तरह की असमानता महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों के विभागों तथा एक विश्वविद्यालय एवं दूसरे विश्वविद्यालय के मध्य आसानी से देखी जा सकती है।

विद्यालय के स्तर एवं उनमें पढ़ने वाले विद्यार्थियों की सामाजिक पृष्ठभूमि के मध्य गहरा संबंध हैं। समाज के धनी वर्ग के बच्चे प्राइवेट स्कूल में पढ़ते हैं जबकि गरीब तबकों के अधिकांश बच्चे सरकारी विद्यालय में जाते हैं। प्राइवेट स्कूल एवं सरकारी विद्यालयों द्वारा दी जाने वाली शिक्षा की प्रकृति एवं स्तर में गुणात्मक अंतर है। प्राइवेट स्कूल द्वारा दी जाने वाली शिक्षा महंगी है जिसका लाभ केवल धनी वर्ग के विद्यार्थी ही उठा सकते हैं। इन संस्थाओं में शिक्षा प्राप्त करने हेतु किये गये खर्च से कहीं अधिक

सामाजिक-आर्थिक लाभ भविष्य में इनके छात्र उठाते हैं। ये प्राइवेट स्कूल विद्यार्थी एवं समाज में प्रतिष्ठित स्थान के मध्य एक स्वभाविक सेतु का कार्य करते हैं।

स्वतंत्र भारत में शिक्षा वस्तुत: उच्च एवं मध्य वर्ग तक ही सीमित है तथा समाज के निर्धन वर्ग पर कोई भी धनात्मक प्रभाव छोड़ने में असफल रही है। आज भी 10 से 15 प्रतिशत बच्चे विद्यालयी व्यवस्था के बाहर हैं। साथ ही अत्यन्त ही छोटा वर्ग 12 वर्ष की विद्यालयी शिक्षा से किसी भी प्रकार का लाभ उठाने में समर्थ है। कक्षा-I में प्रवेश लेने वाले प्रति 100 विद्यार्थी में से केवल 50 विद्यार्थी ही कक्षा -V में पहुँच पाते हैं। कक्षा-XII तक संबंधित आयु वर्ग के केवल 15 प्रतिशत विद्यार्थी ही पहुँचते हैं। 100 में से केवल 8 विद्यार्थी ही स्नातक की उपाधि हासिल कर पाते हैं। ये प्राय: समाज के सुविधा प्राप्त वर्ग से आते हैं।

शिक्षा के क्षेत्र की सही तस्वीर देखने के लिए यह आवश्यक है कि हम साक्षरता से संबंधित कुछ आंकड़ों को देखें। 2001 ई0 की जनगणना के अनुसार भारत की कुल जनसंख्या का लगभग 35 प्रतिशत भाग निरक्षर है। स्त्री एवं पुरुष साक्षरता दर में काफी अंतर है। पुरुषों के मध्य साक्षरता दर 76 प्रतिशत है जबकि महिलाओं में साक्षरता दर केवल 54 प्रतिशत है। इस तरह की विषमता विभिन्न प्रान्तों के मध्य भी देखी जा सकती है। केरल में साक्षरता दर 90 प्रतिशत से भी अधिक है जबकि बिहार में यह दर लगभग 47 प्रतिशत है। बिहार की दो तिहाई महिलायें इक्कीसवीं सदी में भी निरक्षर हैं। अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जाति में साक्षरता और शिक्षा की स्थिति अत्यन्त ही कमजोर है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि अब तक शिक्षा भारत की जनसंख्या के एक बड़े भाग को छू तक नहीं पायी है।

कमजोर तबकों के विद्यार्थियों का एक बड़ा हिस्सा बिना किसी प्रकार की शिक्षा प्राप्त किये विद्यालय छोड़ देता है। वंचित वर्ग के विद्यार्थियों द्वारा बड़ी संख्या में विद्यालय छोड़ने का कारण उनमें विमुखता (एलिअनेशन) का भाव पैदा होना है। विद्यालय का वातावरण, अध्यापकों का व्यवहार एवं पाठ्यक्रम मध्यवर्ग के मूल्यों पर आधारित होते हैं। साथ ही विषय सामग्री जो कि मध्यवर्ग के सांस्कृतिक परिवेश को प्रदर्शित करती हैं, ऐसी भाषा में परोसा जाता है जो श्रमिक वर्ग के बच्चों की समझ में आसानी से नहीं आता है। इस प्रकार न केवल विषय-वस्तु दलित विद्यार्थियों के जीवन से भिन्न होता है-वरन् जिस भाषा में शिक्षा दी जाती है वह भी उनकी समझ से परे होती

है। इन परिस्थिति का सबसे दुखद परिणाम यह होता है कि वंचित वर्ग के विद्यार्थियों में विमुखता का भाव पैदा होता है और अंततः वे पाठ्यक्रम पूरा किये बिना विद्यालय को छोड़ देते हैं।

प्राइवेट स्कूल में अध्यापक और विद्यार्थी, दोनों ही समाज के ऊपरी तबके से आते हैं। अध्यापक अपने उच्च और मध्य वर्ग के विद्यार्थियों से आसानी से तादात्मय स्थापित कर लेते हैं। लेकिन सरकारी विद्यालयों में अधिकांश शिक्षक मध्यमवर्ग से आते हैं जबकि विद्यार्थी निम्न वर्ग से। यह सामाजिक विषमता अध्यापकों को अपने विद्यार्थियों एवं उनकी समस्याओं से सहज संबंध बनाने से रोकती है। सरकारी विद्यालयों में अध्यापक एवं विद्यार्थी के मध्य सहज संवाद के अभाव से अध्यापकों के मध्य यह भाव घर कर जाता है कि निम्न वर्ग के ये विद्यार्थी मूढ़ हैं और शिक्षा के क्षेत्र में सफल नहीं हो सकते। इसका परिणाम यह होता है कि परीक्षा एवं मूल्यांकन के नाम पर श्रमिक वर्ग के विद्यार्थी, जिनका भिन्न मूल्य, पृष्ठभूमि एवं सांस्कृतिक परिवेश होता है, को कम अंक देकर हतोत्साहित किया जाता है।

अधिकांश प्राइवेट विद्यालयों में अंग्रेजी भाषा के माध्यम से शिक्षा दी जाती है जबकि सरकारी विद्यालयों में आधुनिक भारतीय भाषाओं के माध्यम से। भाषा का यह अंतर सामाजिक विषमता की खाई को और अधिक गहरा करता है। अंग्रेजी जानने वाले विद्यार्थियों को उच्च शिक्षा हेतु अच्छे संस्थानों में आसानी से प्रवेश मिलता है जबकि भारतीय भाषाओं के माध्यम से पढ़े विद्यार्थियों को दोयम दर्जे की संस्थाओं में। इस तरह से अंग्रेजी की शिक्षा विद्यार्थियों के लिए प्रशासन, चिकित्सा, शिक्षा, इंजीनियरिंग आदि में उच्च स्तरीय नौकरियां सुनिश्चित कर देती हैं और भारतीय भाषाओं के माध्यम से पढ़े विद्यार्थी समाज के प्रतिष्ठित पदों को पाने से वंचित रह जाते हैं।

महात्मा गांधी (2002:80) ने गहराई से इस तथ्य को महसूस किया था कि ''औपनिवेशिक शासन द्वारा स्थापित शिक्षा व्यवस्था धनी शोषकों के पक्ष में और गरीब शोषितों के खिलाफ हैं।''अतः उन्होंने स्पष्ट रूप से थोड़े से सम्पन्न और आम निर्धन वर्ग के मध्य के इस भेद को समाप्त करना शिक्षा का महत्वपूर्ण कार्य माना। बुनियादी शिक्षा (नई तालीम) के माध्यम से वे एक शोषित रहित, समानता पर आधारित समाज की रचना करना चाहते थे जिसमें प्रत्येक नागरिक न केवल शिक्षित, सभ्य एवं सुसंस्कृत हो वरन् सामाजिक रूप से उपयोगी उत्पादक भी हो। बुनियादी शिक्षा के पाठ्यक्रम के

केंद्र में शिल्प है जिसमें मानव श्रम को प्रधानता दी गयी है। यहाँ इस तथ्य पर ध्यान देना चाहिए कि बुनियादी शिक्षा का तात्पर्य शिक्षा एवं शिल्प नहीं है। वरन् शिल्प के माध्यम से शिक्षा है।

बुनियादी शिक्षा एक क्रांतिकारी योजना थी जिससे समाज के स्वरूप में व्यापक परिवर्तन लाया जा सकता था। पर कतिपय कारणों से यह योजना असफल रही। स्वतंत्र भारत में सत्ता में आसीन वर्ग ने हृदय से इस योजना को कभी स्वीकार नहीं किया। भारत का उच्च एवं मध्यम वर्ग परम्परागत रूप से मानव श्रम को हीन कार्य मानता रहा है और पुस्तक केंद्रित बौद्धिक शिक्षा के प्रति इनका गहरा झुकाव रहा है। इस प्रभावशाली वर्ग द्वारा उत्पादक कार्य एवं मानव श्रम को विद्यालय के पाठ्यक्रम में स्थान देने का सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक रूप से प्रतिरोध किया गया। इस प्रकार हम पाते हैं कि महात्मा गांधी द्वारा भारत में एक प्रजातांत्रिक एवं समतावादी शिक्षा व्यवस्था के विकास हेतु किये गये प्रयास को असफलता मिली।

शिक्षा आयोग (1964-66)ने 'कॉमन स्कूल सिस्टम' की अवधारणा पर जोर देकर भारत में शिक्षा के वर्गीय चरित्र को समाप्त करने की वकालत की। कॉमन स्कूल सिस्टम के कार्यक्रम द्वारा 'नेवरहुड स्कूल' की स्थापना का लक्ष्य रखा गया। नेवरहुड स्कूल या 'पड़ोस का विद्यालय' का तात्पर्य यह है कि एक पड़ोस के सभी बच्चे चाहे वे सम्पन्न परिवार से आते हों या निर्धन परिवार से- एक ही स्कूल में पढ़ेंगे। यानि सामाजिक-आर्थिक स्थिति विद्यालय के चयन का आधार नहीं बनेगी।

कॉमन स्कूल सिस्टम या नेबरहुड स्कूल की अवधारणा को क्रियान्वित करने की बात 1968 एवं 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीतियों एवं 1992 की संशोधित राष्ट्रीय नीति में कही गयी। राष्ट्रीय शिक्षा नीति संसद से स्वीकृत होती है। प्रथम शिक्षा नीति पारित हुए चार दशक गुजर गये पर आज कोई भी शिक्षाशास्त्री, योजना निर्माता, सांसद या नौकरशाह कॉमन स्कूल सिस्टम का नाम भी नहीं लेता है। यह भारतीय संसद, भारतीय संविधान एवं भारतीय जन के प्रति बहुत बड़ा विश्वासघात है जो शिक्षा के द्वारा वर्गीय हितों को सुरक्षित रखने के लिए किया जा रहा है।

भारत सरकार ने यह महसूस किया कि जनसामान्य को साक्षर एवं शिक्षित बनाने हेतु औपचारिक शिक्षा पर्याप्त नहीं है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए एक वैकल्पिक एवं पूरक अभिकरण के रूप में अनौपचारिक शिक्षा पद्धति पर जोर दिया जा रहा है।

इसके तहत अनेक प्रौढ़ शिक्षा केंद्र, पत्राचार पाठ्यक्रम, मुक्त विद्यालय एवं मुक्त विश्वविद्यालय खोले गये। संचार के साधनों का शिक्षा देने के लिए बड़े स्तर पर प्रयोग किया जाने लगा। अनौपचारिक शिक्षा का उद्देश्य केवल क्रियात्मक साक्षरता प्रदान करना ही नहीं है वरन् व्यक्ति को सामाजिक रूप से जागरूक भी बनाना है। सामाजिक जागरूकता पहली सीढ़ी है जहाँ से प्रारंभ कर भारतीय समाज का पूर्ण कायाकल्प किया जा सकता है। शिक्षा आयोग (1964-66) ने स्पष्ट शब्दों में कहा-''अनौपचारिक शिक्षा अनिवार्य रूप से परिवर्तन के कारगर उपकरण के रूप में कार्य करेगी।'' इस आयोग के प्रतिवेदन में आगे कहा गया- ''एक अधिक संतुलित शैक्षिक एवं सामाजिक व्यवस्था के विकास के लिए अनौपचारिक शिक्षा आवश्यक है। इससे सुविधा प्राप्त सम्पन्न वर्ग एवं सुविधाहीन वंचित वर्ग के जीवन स्तर के अंतर को पाटा जा सकता है।''

लेकिन अगर हम भारत में अनौपचारिक शिक्षा के कार्यक्रमों की समीक्षा करें तो स्पष्ट होता है कि अनौपचारिक शिक्षा के कार्यक्रम भी विषमता पर आधारित सामाजिक संरचना में कोई भी परिवर्तन लाने में असफल रहा है। प्रसिद्ध शिक्षा शास्त्री जे.पी. नायक (1980:277) ने स्पष्टत: स्वीकार किया कि '' अनौपचारिक शिक्षा के नये कार्यक्रमों से भी केवल उच्च एवं मध्यम वर्ग तथा सम्पन्न ग्रामीण ही लाभान्वित हुए हैं। इन्होंने गरीबों को शिक्षित एवं आधुनिक बनाने या उनके जीवन स्तर में सुधार हेतु कोई भी कार्य नहीं किया है।''भारत के प्रथम मुक्त विश्वविद्यालय आंध्रप्रदेश मुक्त विश्वविद्यालय का लर्नर प्रोफाइल (प्रसाद,1988:128,129) भी इस तथ्य की पुष्टि करता है कि ''यह (मुक्त विश्वविद्यालय) श्रमिकों एवं किसानों को आकर्षित करने में असफल रहा है तथा उच्च शिक्षा की सुविधा ग्रामीण क्षेत्रों में उपलब्ध कराने में भी इसे कोई सफलता नहीं मिली है।''

निष्कर्ष

शिक्षा की समाज में भूमिका और सामाजिक संरचना का शिक्षा पर प्रभाव की उपर्युक्त विवेचना से यह स्पष्ट है कि असमानता पर आधारित सामाजिक संरचना का शिक्षा के विकास एवं उसके द्वारा प्रचारित किये जाने वाले मूल्यों पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। लेकिन इस हतोत्साहित करने वाले तथ्य से हमें निराश नहीं होना चाहिए। हम लोगों को हमेशा इस बात को ध्यान में रखना चाहिए कि ''शिक्षा एवं ज्ञान में मुक्ति के पक्ष में अन्तर्निहित झुकाव है'' (शुक्ला, 1980:17) दूसरे शब्दों में शिक्षा ही जनसामान्य को

उसकी दमित स्थिति के संदर्भ में जागरूक बना सकती है। यह जागरूकता ही असमान, शोषण पर आधारित सामाजिक संबंधों में क्रांतिकारी परिवर्तन लाने का सर्वाधिक महत्वपूर्ण साधन है। इस प्रकार हम पाते हैं कि शिक्षा जो समाज द्वारा विकसित की जाती है उसमें समाज में परिवर्तन लाने की भी अपार क्षमता है।

संदर्भ

अल्थयुसर, लुईस (1972), *'आइडियोलॉजी एंड आईडियोलोजिकल स्टेट अप्रेटस्'* इन बी. आर. कोजिन (सं.) एजुकेशन, स्ट्रक्चर एंड सोसाइटी, हार्मोण्डसवर्थ: पेंग्विन बुक्स.

बोअलस, एस. एवं एच. गिन्टिस (1976), *स्कूलिंग इन कैपिटलिस्ट अमेरिका,* लंदन : राउतलेज एंड केगन पॉल.

दुर्खीम, एमिल (1956), *एजुकेशन एंड सोसियोलॉजी,* न्यूयार्क: दि फ्री प्रेस.

फ्रेयरे, पाउलो (1970), *पेडागॉजी ऑफ दि आप्रेस्ड,* लंदन: पेंग्विन बुक्स.

गांधी, एम.के. (2002), *हिंद स्वराज, वाराणसी: सर्व सेवा संघ* (1909 में प्रथम बार, गुजराती में प्रकाशित).

कोठारी, डी.एस. (1970), *एजुकेशन एंड नेशनल डेवलपमेंट,* (शिक्षा आयोग 1964-66) का प्रतिवेदन, नई दिल्ली :एन.सी.ई.आर.टी.

नायक, जे.पी. (1980), *'नानफॉरमल एजूकेशन इन इण्डिया'* : ए रिट्रोस्पेक्ट एंड ए प्रोस्पेक्ट', इन ए.बी. शाह एंड सुशीला भान (सं.) नॉन फॉरमल एजुकेशन एंड एन.ए.ई.पी., नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

पारसन्स टालकट (1959), *'दि स्कूल क्लास एज ए सोशल सिस्टम',* हावर्ड एजुकेशनल रिव्यू, 23,4.

प्रसाद, वी. (1988), *'ए.पी.ओ.यू. लर्नर प्रोफाईल: ए केस स्टडी'*, इन बी.एन. कौल (सं.), स्टडीज इन डिसटेंस एजुकेशन, नई दिल्ली: ए.आई.यू., इग्नू.

शुक्ला, सुरेशचंद्र (1980), *'सोशल आस्पेक्ट्स ऑफ नान फॉरमल एजुकेशन,* इन ए.बी. शाह' एंड सुशीला भान (सं.), नॉनफॉरमल एजुकेशन एंड एन.ए.ई.पी., नई दिल्ली: आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 14, अंक 3, दिसंबर 2007

उच्च शिक्षा में महिलाओं की स्थिति एवं व्यावसायिक भेदभाव

सुजीत कुमार चौधरी*

महिलाएं किसी समाज/समुदाय का एक महत्वपूर्ण घटक होती हैं जो माता, पत्नी, बहन तथा आय-उपार्जक जैसी अनेक भूमिकाएं निभाती हैं। इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि शिक्षा महिलाओं की इन भूमिकाओं को निभाने में प्रभावी रूप से मदद कर सकती है क्योंकि यह उनकी साक्षरता कौशल को बेहतर स्वच्छता तथा पारिवारिक स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता बढ़ाने में सहायक है। वास्तव में महिलाएं अपने खाली समय का सदुपयोग व्यावसायिक कौशल को विकसित कर आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान देकर करती हैं जो शोषण के खिलाफ लड़ने और अपने विरूद्ध होने वाले सभी प्रकार के भेदभाव से जीतने में सहायक होती हैं और यही वस्तुत: बेहतर तथा सबसे प्रमुख सशक्तिकरण है। अतएव शिक्षा महिलाओं को विकास प्रक्रिया में भागीदार होना तथा उससे लाभ उठाने योग्य बनाने हेतु आवश्यक है। दशोरा एवं शर्मा इस संदर्भ में उचित ही लिखते हैं कि - जब स्त्रियां शिक्षित होती हैं तो उनकी निर्भरता स्वत: ही समाप्त हो जाती है, (कम से कम) जिससे उनका सर्वांगीण विकास निर्दिष्ट होता है, जो कि राष्ट्र की समृद्धि में सहायक होता है (दशोरा एवं शर्मा, 2003:40)

शिक्षा का उपयोग एक समाज द्वारा स्वयं के लिए निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने तथा उन्हें आगे बढ़ाने हेतु किया जाता है (चौधरी 2005:44)। दूसरी ओर शर्मा का तर्क है कि ''वस्तुत: शिक्षा गतिशीलता के लिये एक प्रतिस्पर्धा का निर्माण करती है। उपलब्धि का तत्त्व शिक्षा में अन्तर्निहित है'' (शर्मा 2001:205)। शिक्षा पर सामान्य रूप से उपलब्ध अधिकांश साहित्य और आंकड़ें, सामान्य रूप से शिक्षा एवं विशेष रूप से उच्च शिक्षा में महिलाओं का अनुपात प्रदर्शित करते हैं कि - महिलाएं शिक्षा से वंचित रहती हैं। पारम्परिक रूप से ही भारतीय समाज में महिलाओं के लिए औपचारिक

* शोध छात्र, सामाजिक विज्ञान संस्थान (समाजशास्त्र विभाग), जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली-110067

शिक्षा को कभी अधिक महत्त्व नहीं दिया गया। इस संदर्भ में, महिलाओं में शिक्षा के अवसरों को अवरूद्ध करने के लिए अन्य तत्व उत्तरदायी हैं। एन सी ई आर टी द्वारा कराये गए एक अध्ययन से यह तथ्य सामने आया कि 77.8 प्रतिशत अभिभावक अपनी लड़कियों के लिए किसी भी प्रकार की शिक्षा के पक्ष में नहीं थे (एन सी ई आर टी 1981:83)। इस संदर्भ में गोरे ने स्पष्ट किया है कि ''महिलाएं, ग्रामीण क्षेत्र में शहरी क्षेत्रों के अनुपात में अधिक स्कूल छोड़ती हैं'' (गोरे 1982:34)। महिला शिक्षा के पिछड़ने का प्रमुख कारण माताओं में निम्न साक्षरता अथवा सीमित शिक्षा तक का पहुँच होना पाया जाता है (एनसीईआरटी 1981:223)। इसके अतिरिक्त, शिक्षिकाओं का अभाव, असंबद्ध पाठ्यक्रम तथा गृहणियों के कार्य आवश्यकताओं व विद्यालय के समय में तालमेल का अभाव भी महिलाओं का शिक्षा में कमी के कारण हैं (एनसीईआरटी 1981:81)। साथ ही चौधरी का मत है कि शिक्षा में अध्यापन के माध्यम भी महिलाओं की शैक्षिक उपलब्धि तक पहुँच की कमी के लिए उत्तरदायी हैं क्योंकि विशिष्ट शिक्षा (अंग्रेजी शिक्षा) समाज के एक छोटे तपके तक ही सीमित है (चौधरी 2006:33)। हालांकि इस तथ्य को नकारा नहीं जा सकता है कि महिलाएं तीव्रता से शिक्षा प्राप्त कर रही हैं फिर भी वे अभी भी पुरुषों की तुलना में पीछे हैं।

महिलाओं में उच्च शिक्षा के तीव्र विस्तार के लाभ मुख्य रूप से शहरी क्षेत्रों में उच्च सामाजिक तपके और उच्च जाति के समूह की महिलाओं तक ही सीमित हैं (जयराम 1987:125)। वास्तव में, लिंग के आधार पर शैक्षिक अवसरों की असमानता तब तक एक महत्वहीन मुद्दा ही बना रहेगा जब तक कि महिलाओं के लिये शिक्षा की प्रासंगिकता के प्रश्नों का संतोषजनक उत्तर नहीं दे दिया जाता।

महिला शिक्षा के लिए एक अन्य महत्वपूर्ण सामाजिक-आर्थिक आयाम है अभिभावकों का व्यवसाय जो कि उच्च शिक्षा में महिलाओं के दाखिले को प्रभावित करने वाला सबसे महत्वपूर्ण कारक प्रतीत होता है। के. अहमद ने अपने अध्ययन में पाया कि महिला विद्यार्थियों की संख्या में अधिकांश वरिष्ठ प्रशासनिक और प्रबंधकीय कर्मचारियों, वरिष्ठ पेशेवर तथा उद्योगपतियों के परिवारों से थीं (अहमद 1974:185-86)। दिल्ली विश्वविद्यालय और बड़ौदा विश्वविद्यालय (शाह 1961:41) के छात्रों में भी इस प्रकार के निष्कर्ष प्राप्त हुये हैं। एन.सी.ई.आर.टी. की अखिल भारतीय क्षेत्र अध्ययन भी इस बात की पुष्टि करता है। साथ ही अगर, हम राज्य स्तर पर उच्च शिक्षा में

महिलाओं की भागीदारी का आकलन करें तो उस राज्य के पिछड़ेपन को देखा जा सकता है (देखें तालिका–1)।

तालिका–1

भारत के प्रमुख राज्यों में उच्च शिक्षा में महिला भागीदारी (प्रतिशत में)

राज्य	महिलाओं की भागीदारी (कुल का प्रतिशत), 2004–05	राज्य	महिलाओं की भागीदारी (कुल का प्रतिशत), 2004–05
अखंड भारत	**40.4**	कर्नाटक	41.34
पश्चिम बंगाल	39.38	झारखंड	30.54
उत्तराखण्ड	42.39	जम्मू और कश्मीर	46.8
उत्तर प्रदेश	36.83	हिमाचल प्रदेश	43.79
तमिलनाडु	45.72	हरियाणा	41.28
राजस्थान	33.98	गुजरात	44.41
पंजाब	51.64	गोवा	59.05
उड़ीसा	35.93	दिल्ली	48.82
मिजोरम	45.6	छत्तीसगढ़	37.04
मेघालय	48.11	बिहार	24.46
महाराष्ट्र	41.4	आसाम	41.4
मध्य प्रदेश	37.17	आन्ध्र प्रदेश	40.17
केरल	60.85		

स्रोत – विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, वार्षिक रिपोर्ट, 2004–05

उच्च शिक्षा में महिलाओं के नामांकन की हाल की स्थिति दिन प्रतिदिन वृद्धि की ओर अग्रसर है। महिलाओं की भागीदारी कुल में जो 1950–51 में केवल 10 प्रतिशत थी वह बढ़कर 2002–03 में 40.1 प्रतिशत हो गयी (तालिका–2)। लेकिन तथ्य यह है कि समाज के अन्य क्षेत्रों की तुलना में पेशेवर/तकनीकी/कौशल शिक्षा में महिलाओं की दर अभी भी धीमी है। यह वृद्धि शिक्षा के हर स्तरों पर देखने को मिलती है। परन्तु सामाजिक एवं लिंग आधारित भेदभाव अभी भी एक प्रमुख समस्या बनी हुई है। यह

भेदभाव मूलत: विद्यालयी स्तर के शिक्षा का प्रतिफल है। अत: आवश्यकता इस बात कि है कि विद्यालय स्तर की शिक्षा में आधारभूत परिवर्तन सामाजिक भेदभाव को हटाकर किया जाय ताकि महिलाओं की शिक्षा में प्रगति हो। इस बात की पुष्टि नीचे दी गई तालिका में होती है :

तालिका-2

उच्च शिक्षा में महिलाओं की विविध स्तरों पर भागीदारी (नामांकन प्रतिशत में)

वर्ष	स्नातकोत्तर एवं पी-एच.डी.	स्नातक	अभियांत्रिकी (स्नातक)	शिक्षा-स्नातक	मेडीकल (स्नातक)	कुल
1970-71	25.8	24.4	1.0	37.3	22.4	23.6
1980-81	31.7	27.8	3.6	40.9	24.3	27.5
1990-91	32.2	34.7	10.9	44.2	34.3	33.2
2000-01	36.7	37.4	22.3	42.8	40.6	36.8
2000-03	42.3	42.0	22.6	52.0	41.6	40.1

स्रोत- भारत सरकार रिपोर्ट, 2006

इस संदर्भ में, एक अन्य आंकड़ा (मुखोपाध्याय 1999:60-1) जो कि शिक्षा में कुल नामांकन का एक संकाय आधारित विश्लेषण प्रस्तुत करता है, से यह स्पष्ट होता है कि कला संकाय में महिलाओं का प्रतिशत 52.4 से भी अधिक था किन्तु अभियांत्रिकी तथा तकनीकी से सबंधित पाठ्यक्रमों में यह मात्र 62.2 प्रतिशत था। महिला शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिए पूरे देश में महिला महाविद्यालय स्थापित करते हुए विशेष प्रयत्न किये गये हैं। 1982-83 में जहाँ 647 महिला महाविद्यालय थे, वहीं 1991-92 में यह बढ़कर 925 हो गये थे। महिला महाविद्यालय की संख्या में करीब 5 प्रतिशत वृद्धि होने के बावजूद महिलाओं का नामांकन केवल 5 प्रतिशत ही बढ़ा है। यह तथ्य सामान्य तथा तकनीकी, दोनों ही प्रकार की शैक्षिक संस्थाओं में महिलाओं के नामांकन से संबंधित कुछ गंभीर सवाल उत्पन्न करते हैं। यहाँ प्रश्न केवल नामांकन का ही नहीं है, अपितु उस व्यावसायिक भेदभाव का भी है जिसका सामना उन महिलाओं को विभिन्न स्तर पर करना पड़ता है जो कि पहले ही सामान्य या तकनीकी शिक्षा में कोई विशेष डिग्री हासिल कर चुके हैं।

भारत में पितृसत्तात्मक समाज होने के नाते लिंग के आधार पर व्यावसायिक भेदभाव किये जाते रहे हैं। महिलाओं के प्रति यह भेदभाव बहुत हद तक उन सामाजिक मूल्यों का नतीजा है जिनका लक्ष्य उन्हें पुरुष के आधिपत्य में एक निम्नतर स्थिति में रखना होता है। महिलाओं की गतिशीलता भी सीमित होती है जो कि विभिन्न व्यवसायों में उनकी भागीदारी को और अधिक सीमित कर देता है। महिलाओं की एक छोटी संख्या जो कि रोजगार के लिए श्रम बाजार में प्रवेश करती है, उन्हें भी रोजगार देने वालों के भेदभावपूर्ण रवैये का शिकार होना पड़ता है (मुखोपाध्याय 1981:94–117)। कामगारों की क्षमता से संबंधित कुछ पूर्वाग्रहों के चलते और उनके खर्च को न्यूनतम करने के प्रयत्न के कारण महिलाओं को अनेक कार्यों के लिए शारीरिक रूप से उपयुक्त नहीं समझा जाता (पडोला 1982)। यह व्यवसायिक भेदभाव इस तथ्य से स्पष्ट हो जाता है कि महिलाएं निजी क्षेत्र की कम्पनियों के वरिष्ठ पदों पर आरूढ़ व्यक्तियों में सिर्फ 3 प्रतिशत हैं। एक अध्ययन (1998) से स्पष्ट हुआ है कि, भारतीय प्रबंधन संस्थान अहमदाबाद से प्रबंधन में स्नातकोत्तर महिलाओं में करीब 70 प्रतिशत किसी भी प्रकार की कैरियर नहीं अपनातीं। इसके पीछे 2 मूल कारण हैं– 1. अधिकांश महिलाएं अपने कैरियर के प्रति गंभीर नहीं होती हैं, प्राय: वे बिना किसी निश्चित योजना के मात्र कुछ अतिरिक्त धन अर्जित करने के लिए कार्य करती हैं; 2. उनमें से कई लगभग एक वर्ष काम करने के उपरांत शादी कर लेती हैं और अपनी नौकरी को बीच में छोड़ देती हैं। हालांकि हाल के वर्षों में परिस्थितियां बेहतर हो रही हैं– जहाँ 1987 में निजी क्षेत्र में महिला श्रमबल कुल श्रम बल का मात्र 13 प्रतिशत थी वहीं 2000 में वह 20 प्रतिशत तथा आज करीब 28 प्रतिशत तक हो गई है (बनर्जी 2003)। अत: धीरे ही सही, परन्तु परिवर्तन हो रहा है।

संक्षेप में, उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि महिलाओं के उच्च शिक्षा में न्यूनतम भागीदारी तथा विभिन्न क्षेत्रों में कम प्रतिनिधित्व के लिए विभिन्न सामाजिक–सांस्कृतिक कारक उत्तरदायी रहे हैं। महिलाओं के प्रति सामाजिक भेदभाव तथा सांस्कृतिक पूर्वाग्रह अभी भी मौजूद हैं। हमारा विश्लेषण इस तथ्य में भी निहित है कि शहरी क्षेत्रों में समाज के वर्गों और उच्च जातियों की महिलाओं की पहुँच उच्च शिक्षा तक अधिक है और उन्हें अपेक्षाकृत कम व्यावसायिक भेदभाव का सामना करना पड़ता है।

संदर्भ

अहमद, के. (1974), वीमेन्स हायर एजुकेशन: रीक्रुटमेन्ट एंड रेलीवेन्स इन ए. सिंह एंड पी. जी. अल्तबेक (एडिट्स) *दी हायर लर्निंग इन इंडिया,* विकास पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली

बनर्जी, कांचना (2003), परसिस्टींग बायस, *सहारा टाइम* (वीकली न्यूजपेपर), जून 7

चौधरी, सुजीत कुमार (2005), रोल आफ लैंग्वेज इन एजुकेशन एंड फारमेशन आफ सोशल स्टेट्स, *जर्नल आफ इंडियन एजुकेशन,* नवंबर, एनसीईआरटी, नई दिल्ली।

चौधरी, सुजीत कुमार (2006), हायर एजुकेशन एंड सोशल स्ट्राटिफिकेशन इन इंडिया, *मैनस्ट्रीम,* अप्रैल 7–13।

दशोरा, राकेश एंड अनुश्री शर्मा (2003), रोल आफ ट्राइबेल–वीमेन इन एजुकेशन, योजना, पब्लिकेशन डिवीजन, जून।

गोरे, एम.एस. (1982), *एजुकेशन एंड मार्डनाइजेशन इन इंडिया,* रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर।

गोरे, एम.एस. एंड ऐट एल (1970), *फील्ड स्टडीज इन दि सोशियोलोजी आफ एजुकेशन: अल इंडिया रिपोर्ट,* एनसीईआरटी, नई दिल्ली।

इंडिया ईयर बुक 2001, *मेनपावर प्रोफाइल,* आईएएमआर, नई दिल्ली

जयराम, एन. (1987), *हायर एजुकेशन एंड स्टेट्स रिटेन्स,* मित्तल पब्लिकेशन्स, दिल्ली।

मुखोपाध्याय, मर्मर (1999), हायर एजुकेशन : बेकबान आफ नेशनल डेवलपमेंट इन मर्मर मुखोपाध्याय एंड मधु परहार (सं) *इंडियन एजुकेशन डेवलपमेंट सिन्स इन डिपेंडेंस,* विकास पब्लिसिंग हाउस, नई दिल्ली

मुखोपाध्याय, एस. (1981) *वीमेंस वर्कर्स इन इंडिया : ए केस आफ मार्केट सेगमेन्टेशन इन दि इंडियन लेबर फोर्स,* ए आर टी ई पी, बैंकाक।

पडोला, टी.एस. (1982) *वीमेन वर्कर्स इन एन अर्बन लेबर मार्केट : ए स्टडी आफ सेग्रीनेशन एंड डीसक्रीमीनेशन इन इम्प्लायमेंट इन लखनऊ,* गाइड (मिमियो)

साह, बी.वी. (1961), गुजराती कालेज स्टुडेंट्स एंड कास्ट, *सोशियोलोजिकल बुलेटिन,* 10(1)

शर्मा, बी.आर. (1971), *वाट मेक्स ए मैनेजर: मेरिट, मोटीवेशन एंड मनी, इपीडब्ल्यु* 7(22)।

शर्मा, के.एल. (2001), *कान्सेपच्युलाइटिंग कास्ट, क्लास, एंड ट्राइब,* रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर।

एनसीईआरटी, 1981, वेश्टेज एंड स्टेगनेशन इन प्राइमरी एंड मिडिल स्कूल, नई दिल्ली

भारत सरकार (2006), *सलेक्टेड एजुकेशनल स्टेटिक्स,* मानव संसाधन विकास मंत्रालय, नई दिल्ली।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यू.जी.सी), 2004–05, *वार्षिक रिपोर्ट,* नई दिल्ली।

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 14, अंक 3, दिसंबर 2007

प्रारंभिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक

मृदुला तिवारी*

प्रस्तावना

शिक्षा व्यक्ति के सर्वांगीण विकास, सामाजिक और राष्ट्रीय प्रगति तथा सभ्यता और संस्कृति के विकास के लिए अनिवार्य है। देश तथा समाज के लिए उपयोगी, सुयोग्य, संवेदनशील एवं उत्तरदायी नागरिकों के निर्माण में शिक्षा की भूमिका सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। आज मनुष्य जो सभ्यता और संस्कृति के सर्वोच्च शिखर पर सुशोभित हो रहा है उसका मूल कारण शिक्षा ही है। शिक्षा विकास का मूल आधार है, शिक्षा के माध्यम से संसार की वैज्ञानिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक उन्नति संभव हुई है। भूमंडलीकरण के इस युग में हो रहे तेजी से विकास में शिक्षा की भूमिका सबसे महत्वपूर्ण है। शिक्षा वह साधन है जो व्यक्ति के व्यक्तित्व को संवारती, निखारती तथा प्रखर बनाती है। अत: इसके लिए आवश्यक है कि शिक्षा की व्यवस्था इस प्रकार की हो जो व्यक्ति के सर्वांगीण विकास, सामाजिक और राष्ट्रीय प्रगति तथा सभ्यता एवं संस्कृति के उत्थान का मार्ग प्रशस्त करे।

शिक्षा हमारे बेहतर जीवन की अनिवार्य शर्त है। ज्ञान के क्षितिज शिक्षा ही खोलती है। यह हमारे वर्तमान को संवारती है और भविष्य के स्वप्न को साकार करती है। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय साक्षरता की शोचनीय स्थिति का अवलोकन करते हुए यह संवैधानिक प्रतिबद्धता दर्शायी गई कि 1960 तक 6 से 14 वर्ष के सभी बालक-बालिकाओं के लिए अनिवार्य व नि:शुल्क शिक्षा प्रदान की जायेगी परंतु हम अभी तक इस लक्ष्य का आंशिक भाग ही प्राप्त कर पाए। सभी के लिए शिक्षा या प्रारंभिक शिक्षा के

* शिक्षिका, शासकीय विद्यालय, इलाहाबाद (उ.प्र.)

सार्वभौमीकरण के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए भारत सरकार के सहयोग से प्रदेशों द्वारा विभिन्न शैक्षिक परियोजनाओं का संचालन कर इन लक्ष्यों की प्राप्ति की ओर हम अग्रसर हैं। लेकिन उसके बाद भी हम विभिन्न कारणों के चलते प्रारंभिक शिक्षा के शत प्रतिशत लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर पाये हैं। शत प्रतिशत लक्ष्य के प्राप्त न हो पाने के कारणों को जानना वर्तमान की आवश्यकता है। इसलिए प्रस्तुत अध्ययन के माध्यम से यह जानने का प्रयास किया गया है कि प्रारंभिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण को प्रभावित करने वाले विभिन्न सामाजिक एवं आर्थिक कारक कौन से हैं।

प्रारंभिक शिक्षा : विश्व स्तरीय प्रयास

विश्व स्तर पर मानव विकास में शिक्षा के महत्व और अनिवार्यता को दृष्टि में रखते हुए इसे एक बुनियादी मानव अधिकार के रूप में अंगीकार किया गया तथा मानव अधिकारों के सार्वभौम घोषणा पत्र(1948) की धारा -26 में इसे व्यक्त किया गया। वर्ष (1989) में बाल अधिकारों पर हुए सम्मेलन और उसके बाद न्यूयार्क (1990) में आयोजित विश्व बाल शिखर सम्मेलन में शिक्षा को एक मुख्य बुनियादी अधिकार माना गया तथा वर्ष (2000) तक सभी के लिए शिक्षा के लक्ष्य को प्राप्त करने पर बल दिया गया। इसके लिए विश्व के सभी राष्ट्रों का ध्यान सभी बच्चों, युवकों एवं प्रौढ़ों को प्राथमिक स्तर की शिक्षा प्रदान करने के उद्देश्य की ओर केंद्रित हुआ। सम्पूर्ण विश्व से निरक्षरता, अशिक्षा उन्मूलन एवं असमानता की खाई कम करने एवं शिक्षा की मूल आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पहली बार 5-9 मार्च 1990 में जोमेतियन, थाइलैण्ड में अंतर्राष्ट्रीय चार एंजेसियों-विश्व बैंक, यूनेस्को, यू.एन.डी.पी. और यूनीसेफ के साथ विश्व के 155 राष्ट्रों के लगभग 1500 सदस्य एक साथ एक मंच पर आये थे और सभी के लिए शिक्षा को वास्तविक बनाने के लिए विश्व के देशों को साथ मिलकर संयुक्त रूप से कार्य करने का संकल्प लिया गया कि वर्ष 2000 तक सभी को शिक्षा सुलभ करा दी जाएगी। इसके लिए सम्मेलन में ''सभी के लिए शिक्षा'' और ''बुनियादी शिक्षा की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कार्य की रूपरेखा'' सर्वसम्मति से अंगीकृत की गयी। इस सम्मेलन में बुनियादी शिक्षा से संबंधित नीतियों में प्रगति की व्यापक समीक्षा हेतु इसके दस वर्षीय आकलन की आवश्यकता का पूर्वानुमान आकलन किया गया। विश्वव्यापी घोषणा पत्र में प्रारंभिक शिक्षा के लिए विद्यालय आयु के बच्चों के लिए अच्छी कोटि की प्राथमिक शिक्षा जिसमें विद्यालय की अवधि पूरा करने के बदले

शिक्षा उपलब्धियों पर बल दिया गया। इसमें प्राथमिक शिक्षा के लिए कहा गया कि''प्रत्येक देश यह सुनिश्चित करेगा कि 14 वर्ष की आयु तक के कम से कम 80 प्रतिशत बच्चे वर्ष 2000 तक संबंधित राष्ट्रीय प्राधिकारियों द्वारा निर्धारित प्राथमिक शिक्षा के लिए शिक्षा उपलब्धि का समान स्तर प्राप्त कर लेंगे''।

प्राथमिक शिक्षा को सर्वसुलभ बनाने, सभी को समान अवसर प्रदान करने, साधनों और कार्यक्षेत्र को व्यापक बनाने, सीखने पर बल देने, शैक्षिक परिवेश में संवर्धन करने, संसाधन जुटाने, सहयोग/सहकार्य/समन्वयन की नीति को विकसित करने तथा अन्तर्राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ करने आदि विषयक कार्यपरक बिंदु निर्धारित किए गए। इसके आलोक में राष्ट्रीय स्तर पर वांछित लक्ष्य की प्राप्ति हेतु एक कार्य योजना तैयार की गई। इस कार्य योजना में बालिका-शिक्षा और सुविधा वंचित वर्गों के बच्चों की शिक्षा को प्राथमिकता, शिक्षा के स्तर में सुधार, सामुदायिक सहभागिता तथा शैक्षिक संगठनों के सहयोग पर विशेष बल दिया गया। जोमेतियन विश्व शिक्षा सम्मेलन वर्ष 1990 के घोषणा पत्र के अनुश्रवण के संदर्भ में स्नेगल (दक्षिण अफ्रीका) की राजधानी, डकार में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विश्व शिक्षा सम्मेलन (2000) आयोजित हुआ। इस सम्मेलन में सभी सदस्य देशों ने सार्वभौम, नि:शुल्क, अनिवार्य और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा वर्ष 2015 तक उपलब्ध करा देने का संकल्प लिया।

शोध अध्ययन की आवश्यकता

स्वतंत्रता के पश्चात प्रारंभिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण, शैक्षिक सुविधाओं की उपलब्धता सुनिशिचित करने के लिए अनेक प्रयास किय गये हैं। इन्ही प्रयासों के अंतर्गत प्रदेश में बेसिक शिक्षा परियोजना, जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम, जनशाला कार्यक्रम, सर्व शिक्षा अभियान कार्यक्रम, प्रारंभिक शिक्षा में शत प्रतिशत नामांकन, धारण तथा उपलब्धि स्तर को सुनिश्चित करने के उद्देश्य से प्रारंभ किया गया जिनके अंतर्गत विद्यालयीन सुविधा के साथ-साथ विद्यालय में विभिन्न भौतिक एवं वित्तीय संसाधन के अतिरिक्त शिक्षकों की नियुक्ति तथा प्रशिक्षण दिया गया है ताकि सभी 6-14 वर्ष आयु वर्ग के सभी बच्चों को नामांकित काराकर नियमित शिक्षा गुणवत्ता के साथ प्रदान किया जा सके। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद, शिक्षा संबंधी सुविधाओं के लगातार सर्वेक्षणों से पता चलता है कि प्रारंभिक चरण में शिक्षा सुविधाओं और नामांकन का काफी विस्तार हुआ है लेकिन अभी भी हम अपने लक्ष्य से दूर हैं।

स्वतंत्रता के बाद देश में माध्यमिक शिक्षा में 1951 में प्रथम पी-एच.डी. शोध कार्य हुआ। 80 के दशक तक देश में 208 शोध कार्य हुए हैं (50 के दशक में 9, 60 के दशक में 25, 70 के दशक में 68 तथा 80 के दशक में 106 शोध कार्य) ये शोधकार्य मोटे तौर पर 10 क्षेत्रों से (इतिहास, प्रगति सर्वे, सार्वभौमीकरण, बच्चों के उपलब्धि स्तर, पाठ्यक्रम निर्माण, मूल्यांकन, विद्यालय प्रक्रिया, शिक्षक एवं शिक्षक प्रशिक्षण, शिक्षा व्यवस्था, शोध आवश्यकता) संबंधित हैं। इन शोध कार्यों में से 36 प्रतिशत पी-एच. डी. स्तर के 5 प्रतिशत एन.सी.ई.आर.टी. प्रोजेक्ट अध्ययन, 20 प्रतिशत एस.आई.ई. /एस.सी.ई.आर.टी. प्रोजेक्ट अध्ययन तथा 44 प्रतिशत अन्य प्रोजेक्ट थे। विभिन्न दशकों में प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में हुए अध्ययनों में से 50 के दशक में 6 अध्ययन, 60 के दशक में 8, 70 के दशक में 21 तथा 80 के दशक में 29 अध्ययन हुए हैं। जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम एवं सर्व शिक्षा कार्यक्रम के माध्यम से प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में कुछ शोध कार्य जिला, राज्य एवं राष्ट्रीय स्तर पर हुए हैं। लेकिन विश्वविद्यालय स्तर पर अभी भी इस क्षेत्र में काफी कार्य करने की आवश्यकता है।

दवे पी.एन.एवं मुर्थी सी.जी. ने 1994 में लगभग 1800 शोध कार्य के सारांशों का अध्ययन किया जिनमें से 54 शोधकार्य प्राथमिक शिक्षा से संबंधित थे जो कि कुल शोध कार्य का 3 प्रतिशत है। अर्थात प्राथमिक स्तर अभी भी इस क्षेत्र में काफी पिछड़ा है। भारत में विश्वविद्यालय एवं शासन स्तर पर प्रारंभिक स्तर की शिक्षा के लिए बहुत ही कम शोध हुए हैं। विश्वविद्यालय स्तर के बी.एड., एम.एड. स्तर के शोधकार्यों में भी सेकण्डरी स्तर को ही प्राथमिकता दी गई है। पी-एच.डी. स्तर के अधिकतर शोधकार्य प्राथमिक स्तर की शिक्षा से अछूते दिखाई पड़ रहे हैं। वर्तमान में शासन स्तर से जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम एवं सर्व शिक्षा अभियान कार्यक्रम के अंतर्गत प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर की शिक्षा के सार्वभौमीकरण के लिए अनेक प्रयास किये जा रहे हैं। इसके अंतर्गत विभिन्न रणनीतियों के लिए विभिन्न हस्तक्षेप किए गये हैं। विभिन्न हस्तक्षेपों के बावजूद हम अभी तक निर्धारित लक्ष्य तक विभिन्न कारणों के चलते नहीं पहुँच सके। विभिन्न परियोजनाओं के अंतर्गत प्रारंभिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण के शत-प्रतिशत लक्ष्य हम अभी तक प्राप्त नहीं कर पाये हैं। इसके कारण जानना वर्तमान की सबसे बड़ी आवश्यकता है। इसी लिए प्रस्तुत अध्ययन के माध्यम से यह जानने का प्रयास किया गया है कि प्रारंभिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण (शत प्रतिशत

नामांकन, धारण तथा गुणवत्तापरक शिक्षा) पर किन सामाजिक एवं आर्थिक कारक का प्रभाव पड़ा है।

अध्ययन के उद्देश्य

प्रस्तुत अध्ययन में उत्तर प्रदेश राज्य के चित्रकूट मण्डल के 4 जिलों के प्राथमिक विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि, विद्यालय नियमितता (उपस्थिति) लेखन दक्षता एवं ठहराव आदि पर पड़ने वाले सामाजिक एवं आर्थिक कारकों के प्रभाव का अध्ययन करने का प्रयास किया गया है। इस अध्ययन का उद्देश्य विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि, विद्यालय में उपस्थिति, लेखन दक्षता एवं ठहराव पर लिंग, जाति, परिवार की आय, परिवार की शिक्षा, परिवार के व्यवसाय, परिवार के आकार, विद्यालय की क्षेत्रवार, जिलेवार स्थिति एवं इनक बीच अंतर्क्रिया के सार्थक प्रभाव का अध्ययन करना था।

प्रयुक्त शब्दावली की व्याख्या

नामांकन का तात्पर्य है कि विद्यालय में कक्षावार कितने बच्चे दर्ज हैं। ठहराव का तात्पर्य है कि विद्यालय में कक्षावार दर्ज बच्चों में से कितने बच्चे नियमित शिक्षा प्राप्त की। ड्रापआउट से तात्पर्य है कि नामांकित बच्चों में से कितने बच्चों ने बीच में ही विद्यालय छोड़ दिया। लेखन दक्षता से तात्पर्य न्यूनतम अधिगम स्तर के अंतर्गत कक्षा 5 स्तर पर भाषा के लेखन के लिए निर्धारित दक्षताओं को लिया गया है, जिसको प्राप्त करने की अपेक्षा इस स्तर के प्रत्येक विद्यार्थी से की जाती है। इसके अंतर्गत विद्यार्थी से सही स्वरूप एवं सही दूरी के साथ लिखना, सही विराम चिन्हों का प्रयोग करते हुए श्रुतलेखन करना एवं संक्षिप्त और स्वतंत्र निबंध लेखन आते हैं, जिसमें सरल अनौपचारिक पत्र तथा संवाद भी सम्मिलित है, को लिया गया है। शैक्षिक उपलब्धि से आशय है कक्षा 5 की वार्षिक परीक्षा में प्राप्त भाषा, गणित, पर्यावरण अध्ययन एवं समग्र अंकों के प्रतिशत से है। उपस्थिति का आशय विद्यार्थी के विद्यालय में उपस्थित दिनों की संख्या से है। इसको प्रतिशत में लिया गया है। इस अध्याय में उपस्थिति से आशय कक्षा 5 में विद्यार्थी वार्षिक परीक्षा तक कितने दिन विद्यालय आया, के प्रतिशत से लिया गया है।

न्यायदर्श

प्रस्तुत शोध में न्यादर्श का चयन निम्नानुसार किया गया :

- अध्ययन में उत्तर प्रदेश राज्य के चित्रकूट मंडल के हमीरपुर, महोबा, बांदा एवं चित्रकूट जिलों को लिया गया।
- प्रत्येक जिले से 30-30 प्राथमिक विद्यालयों का चयन भी यादृच्छिक विधि से किया गया।
- प्रत्येक विद्यालय से 10-10 विद्यार्थियों को चयनित किया गया। अर्थात कुल 1200 बच्चों को न्यादर्श के रूप में लिया गया।

तालिका-1

न्यायदर्श में सम्मिलित कक्षा-5 के विद्यार्थियों की लिंग एवं जातिवार संख्या

क्र.	जाति	छात्र	छात्रा	योग	प्रतिशत
1.	सामान्य	214	200	414	34.6%
2.	पिछड़ी जाति	211	195	406	33.8%
3.	अनुसूचित जाति/जन जाति	199	181	380	31.6%
	योग	624	576	1200	—
	प्रतिशत	52%	48%	—	100%

शोध उपकरण

इस शोधकार्य में उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए शोधकर्ता द्वारा स्वनिर्मित उपकरणों का उपयोग किया गया है जिनका विवरण निम्नानुसार है:

- शैक्षिक उपलब्धि एवं उपस्थित स्तर जानने के लिए शिक्षक के लिए जानकारी संकलन प्रपत्र का उपयोग किया गया।
- विद्यार्थियों के परिवार की सामाजिक, आर्थिक एवं व्यावसायिक स्थिति जानने के लिए अभिभावक साक्षात्कार अनुसूची का निर्माण किया गया।
- भाषा लेखन दक्षता जानने के लिए कक्षा 5 की भाषा पुस्तक की दक्षता पर आधारित उपकरण का निर्माण किया गया।

- बच्चों के ठहराव एवं ड्रापआउट को जानने के लिए विद्यालय रजिस्टर से जाति, लिंग, परिवार की शिक्षा, परिवार के व्यवसाय आदि के अनुसार जानकारी प्राप्त की गई।

प्रदत्तों का विश्लेषण एवं व्याख्या

प्रस्तुत अध्ययन में ''माध्य'',''प्रसरण विश्लेषण'' ('F' परीक्षण) परीक्षण सांख्यिकीय प्रविधियों का प्रयोग किया गया है। शोध अध्ययन में लिए गये उद्देश्यों के आधार पर परिकल्पनाओं का सत्यापन निम्नानुसार किया गया है:

शैक्षिक उपलब्धि पर लिंग, जाति, परिवार की आय एवं इनके बीच अंतर्क्रिया के प्रभाव का अध्ययन

विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि पर लिंग, जाति, परिवार की आय एवं इनके बीच अंतर्क्रिया के प्रभावों का अध्ययन करना है। इसमें लिंग (समूह–1 छात्र तथा समूह–2 छात्रा) के दो स्तर, जाति (समूह–1 सामान्य, समूह–2 को पिछड़ी जाति एवं समूह–3 को अनुसूचित जाति एवं जनजाति) एवं परिवार की आय (समूह 1 में ऐसे परिवारों को शामिल किया गया है, जिनमें परिवार की मासिक आय पांच हजार या उससे अधिक है, उसे उच्च आय समूह का परिवार कहा गया है। समूह 2 में ऐसे परिवारों को शामिल किया गया है, जिनमें परिवार की मासिक आय पांच हजार से कम तथा तीन हजार से अधिक है, इसे मध्यम आय समूह का परिवार कहा गया है। समूह 3 में ऐसे परिवारों को शामिल किया गया है, जिनमें परिवार की मासिक आय तीन हजार या उससे कम है, इसे निम्न आय समूह का परिवार कहा गया है) के तीन–तीन स्तर हैं। इसको ध्यान में रखते हुए प्रदत्तों का विश्लेषण 2 X 3 X 3 X Factorial Design ANOVA सांख्यिकी विधि के द्वारा किया गया है। इसके परिणाम तालिका–2 में नीचे दिये गए हैं।

विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि पर लिंग, जाति, परिवार की आय एवं इनके बीच अंतर्क्रिया के प्रभाव का अध्ययन करने पर लिंग, परिवार की आय और लिंग एवं जाति, जाति एवं परिवार की आय तथा लिंग, जाति एवं परिवार की आय के बीच अंतर्क्रिया का विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि पर सार्थक प्रभाव पाया गया, जबकि जाति तथा लिंग एवं परिवार की आय के बीच अंतर्क्रिया का विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि पर सार्थक प्रभाव नहीं पाया गया।

तालिका-2

विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि के लिए प्रसरण विश्लेषण की 2 X 3 X 3 X Factorial Design ANOVA का सारांश

प्रसरण का स्रोत	मुक्तांश	वर्ग योग	औसत वर्ग योग	'F' अनुपात
लिंग (A)	1	261.09	261.09	7.22 **
जाति (B)	2	185.09	92.54	2.56
परिवार की आय (C)	2	469.33	234.66	6.49 **
AxB	2	553.03	276.52	7.65 **
AxC	2	3.18	1.59	0.04
BxC	4	980.12	245.03	6.78 **
AxBxC	4	930.28	232.57	6.43 **
त्रुटि	1182	42734.39	36.15	
योग	1199			

** 0.01 स्तर पर सार्थकता 0.05 स्तर पर सार्थकता

विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि पर परिवार की शिक्षा, परिवार के व्यवसाय, परिवार के आकार एवं इनके बीच अंतर्क्रिया के प्रभाव का अध्ययन

इस विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि पर परिवार की शिक्षा, परिवार के व्यवसाय, परिवार के आकार एवं इनके बीच अंतर्क्रिया के प्रभावों का अध्ययन करना है। इसमें परिवार की शिक्षा (समूह-1 में प्राथमिक से ऊपर शिक्षा प्राप्त, समूह-2 में प्राथमिक तक शिक्षा प्राप्त तथा समूह-3 में निरक्षर परिवार को लिया गया) परिवार के व्यवसाय (समूह-1 में व्यापारी एवं नौकरी वर्ग, समूह-2 में कृषक वर्ग तथा समूह-3 में मजदूर वर्ग के परिवार को लिया गया है), परिवार के आकार (समूह 1 में ऐसे परिवारों को शामिल किया गया है, जिनके परिवार में सदस्यों की संख्या 6 के कम है, इसे छोटा

आकार समूह परिवार; समूह-2 में ऐसे परिवारों को शामिल किया गया है, जिनके परिवार में सदस्यों की संख्या 6 या 7 है, इसे मध्यम आकार समूह तथा समूह 3 में ऐसे परिवारों को शामिल किया गया है, जिनके परिवार में सदस्यों की संख्या 7 से अधिक है, इसे बड़ा आकार समूह का परिवार कहा गया है) के तीन-तीन स्तर हैं। इसको ध्यान में रखते हुए प्रदत्तों का विश्लेषण 3 X 3 X 3 X Factorial Design ANOVA सांख्यिकीय विधि के द्वारा किया गया है। इसके परिणाम तालिका-3 में नीचे दिये गए हैं:

तालिका-3

विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि के लिए प्रसरण विश्लेषण की 3 X 3 X 3 की Factorial Design ANOVA का सारांश

प्रसरण का स्रोत	मुक्तांश	वर्ग योग	औसत वर्ग योग	'F' अनुपात
परिवार की शिक्षा (A)	2	749.33	374.66	10.35 **
परिवार का व्यवसाय (B)	2	1038.60	519.03	14.34 **
परिवार का आकार (C)	2	160.95	80.48	2.22
AxB	4	180.92	45.23	1.25
AxC	4	224.82	56.20	1.55
BxC	4	274.10	68.53	1.89
AxBxC	8	393.84	49.23	1.36
त्रुटि	1173	42449.33	36.19	
योग	1199			

विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि पर परिवार की शिक्षा, परिवार के व्यवसाय, परिवार के आकार एवं इनके बीच अंतर्क्रिया के प्रभाव का अध्ययन करने पर परिवार की शिक्षा और परिवार के व्यवसाय का विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि पर सार्थक प्रभाव पाया गया, जबकि परिवार के आकार तथा परिवार की शिक्षा एवं परिवार के व्यवसाय, परिवार की शिक्षा एवं परिवार के आकार, परिवार के व्यवसाय एवं परिवार के आकार

तथा परिवार की शिक्षा, परिवार के व्यवसाय एवं परिवार के आकार के बीच अंतर्क्रिया का विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि पर सार्थक प्रभाव नहीं पाया गया।

विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि पर विद्यालय की क्षेत्रवार, जिलावार स्थिति एवं इनके बीच अंतर्क्रिया के प्रभाव का अध्ययन

विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि पर विद्यालय की क्षेत्रवार स्थिति (समूह-1 शहरी क्षेत्र के विद्यालय तथा समूह-2 ग्रामीण क्षेत्र के विद्यालय), विद्यालय की जिलेवार स्थिति एवं इनके बीच अंतर्क्रिया के प्रभावों का अध्ययन करना है। विद्यालय की क्षेत्रवार स्थिति के दो स्तर (शहरी एवं ग्रामीण) तथा विद्यालय की जिलेवार स्थिति के चार स्तर (अध्ययन में चयनित चारों जिले) हैं। इसको घ्यान में रखते हुए प्रदत्तों का विश्लेषण 2 X 4 X Factorial Design ANOVA सांख्यिकीय विधि के द्वारा किया गया है। इसके परिणाम तालिका-4 में नीचे दिये हैं:

तालिका-4

विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि के लिए प्रसरण विश्लेषण की 2 X 4 की Factorial Design ANOVA का सारांश

प्रसरण का स्रोत	मुक्तांश	वर्ग योग	औसत वर्ग योग	'F' अनुपात
विद्यालय की क्षेत्रवार स्थिति (शहरी/ग्रामीण (A)	1	136.33	136.33	3.57 *
विद्यालय की जिलेवार स्थिति (B)	3	335.39	111.80	2.93 *
AxB	3	16.94	5.65	0.15
त्रुटि	1192	45480.28	38.16	
योग	1199			

विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि पर विद्यालय की क्षेत्रवार स्थिति (शहरी/ग्रामीण), विद्यालय की जिलेवार स्थिति एवं इनके बीच अंतर्क्रिया के प्रभाव का अध्ययन करने पर विद्यालय की क्षेत्रवार स्थिति(शहरी/ग्रामीण) एवं विद्यालय की जिलेवार स्थिति का विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि पर सार्थक प्रभाव पाया गया, जबकि विद्यालय की

क्षेत्रवार स्थिति (शहरी/ग्रामीण) एवं विद्यालय की जिलेवार स्थिति के बीच अंतर्क्रिया का विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि पर सार्थक प्रभाव नहीं पाया गया।

विद्यार्थियों की विद्यालय में उपस्थिति पर लिंग, जति, परिवार की आय एवं इनके बीच अंतर्क्रिया के प्रभाव का अध्ययन

इस शोधकार्य का उद्देश्य विद्यार्थियों की विद्यालय में उपस्थिति पर लिंग, जाति, परिवार की आय एवं इनके बीच अंतर्क्रिया के प्रभावों का अध्ययन करना है। इसमें लिंग के दो स्तर, जाति एवं परिवार की आय के तीन-तीन स्तर हैं। इसको ध्यान में रखते हुए प्रदत्तों का विश्लेषण 2 X 3 X 3 X Factorial Design ANOVA सांख्यिकीय विधि के द्वारा किया गया है। इसके परिणाम तालिका-5 में नीचे दिये हैं:

तालिका-5

विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि के लिए प्रसरण विश्लेषण की 2 X 3 X 3 की Factorial Design ANOVA का सारांश

प्रसरण का स्रोत	मुक्तांश	वर्ग योग	औसत वर्ग योग	'F' अनुपात
लिंग (A)	1	528.74	528.74	9.47 **
जाति (B)	2	71.42	35.71	0.64
परिवार की आय (C)	2	589.16	294.58	5.28 **
AxB	2	190.60	95.30	1.71 **
AxC	2	956.21	478.10	8.57 **
BxC	4	525.08	131.27	2.35 **
AxBxC	4	939.23	234.81	4.21 **
त्रुटि	1182	65978.82	55.82	
योग	1199			

विद्यार्थियों की विद्यालय में उपस्थिति पर लिंग, जाति, परिवार की आय एवं इनके बीच अंतर्क्रिया के प्रभाव का अध्ययन करने पर लिंग, परिवार की आय और लिंग एवं परिवार की आय, जाति एवं परिवार की आय तथा लिंग, जाति एवं परिवार की आय के

बीच अंतर्क्रिया का विद्यार्थियों की विद्यालय में उपस्थिति पर सार्थक प्रभाव नहीं पाया गया।

विद्यार्थियों की विद्यालय में उपस्थिति पर परिवार की शिक्षा, परिवार के व्यवसाय, परिवार के आकार एवं इनके बीच अंतर्क्रिया के प्रभाव का अध्ययन

इस शोध कार्य का उद्देश्य विद्यार्थियों की उपस्थिति पर परिवार की शिक्षा परिवार के व्यवसाय, परिवार के आकार एवं इनके बीच अंतर्क्रिया के प्रभावों का अध्ययन करना है। इसमें परिवार की शिक्षा, परिवार के व्यवसाय, परिवार के आकार के तीन-तीन स्तर हैं। इसको घ्यान में रखते हुए प्रदत्तों का विश्लेषण 3 X 3 X 3 Factorial Design ANOVA सांख्यिकी विधि के द्वारा किया गया है। इसके परिणाम तालिका-6 में नीचे दिये हैं:

तालिका-6

विद्यार्थियों की विद्यालय में उपस्थिति के लिए प्रसरण विश्लेषण की 3 X 3 X 3 की Factorial Design ANOVA का सारांश

प्रसरण का स्रोत	मुक्तांश	वर्ग योग	औसत वर्ग योग	'F' अनुपात
परिवार की शिक्षा (A)	2	120.73	60.36	1.03
परिवार का व्यवसाय (B)	2	194.46	97.23	1.66
परिवार का आकार (C)	2	24.97	12.48	0.21
AxB	4	61.16	15.29	0.26
AxC	4	96.05	24.01	0.41
BxC	4	255.99	64.00	1.09
AxBxC	8	100.49	12.56	0.21
त्रुटि	1173	68856.66	58.70	
योग	1199			

विद्यार्थियों की विद्यालय में उपस्थित पर परिवार की शिक्षा, परिवार के व्यवसाय, परिवार के आकार एवं इनके बीच अंतर्क्रिया के प्रभाव का अध्ययन करने पर परिवार की शिक्षा,

परिवार के व्यवसाय, परिवार के आकार और परिवार की शिक्षा एवं परिवार के व्यवसाय, परिवार की शिक्षा एवं परिवार के आकार, परिवार के व्यवसाय एवं परिवार के आकर तथा परिवार की शिक्षा, परिवार के व्यवसाय एवं परिवार के आकर के बीच अंतर्क्रिया का विद्यार्थियों की विद्यालय में उपस्थिति पर सार्थक प्रभाव नहीं पाया गया।

विद्यार्थियों की विद्यालय में उपस्थिति पर विद्यालय की क्षेत्रवार, जिलावार स्थिति, एवं इनके बीच अंतर्क्रिया के प्रभाव का अध्ययन

इस शोधकार्य का उद्देश्य विद्यार्थियों की विद्यालय में उपस्थिति पर विद्यालय की क्षेत्रवार स्थिति (शहरी / ग्रामीण) तथा विद्यालय की जिलेवार स्थिति एवं इनके बीच अन्तर्क्रिया के प्रभावों का अध्ययन करना है। विद्यालय की क्षेत्रवार स्थिति के दो स्तर (शहरी एवं ग्रामीण) तथा विद्यालय की जिलेवार स्थिति के चार स्तर (अध्ययन में चयनित चारों जिले) हैं। इसको घ्यान में रखते हुए प्रदत्तों का विश्लेषण 2X4X Factorial Design ANOVA सांख्यिकीय विधि के द्वारा किया गया है। इसके परिणाम तालिका-7 में नीचे दिये गए हैं:

तालिका-7

विद्यार्थियों की विद्यालय में उपस्थिति के लिए प्रसरण विश्लेषण की 2 X 4 की Factorial Design ANOVA का सारांश

प्रसरण का स्रोत	मुक्तांश	वर्ग योग	औसत वर्ग योग	'F' अनुपात
विद्यालय की क्षेत्रवार स्थिति (शहरी/ग्रामीण (A)	1	64.03	64.03	1.18
विद्यालय की जिलेवार स्थिति (B)	3	4287.56	1429.19	26.35 **
AxB	3	740.86	246.95	4.55 **
त्रुटि	1192	64655.37	54.24	
योग	1199			

विद्यार्थियों की विद्यालय में उपस्थिति पर विद्यालय की क्षेत्रवार स्थिति (शहरी/ग्रामीण), विद्यालय की जिलेवार स्थिति एवं इनके बीच अंतर्क्रिया के प्रभाव का अध्ययन करने

पर विद्यालय की क्षेत्रवार स्थिति(शहरी/ग्रामीण) एवं विद्यालय की जिलेवार स्थिति के बीच अंतर्क्रिया का विद्यार्थियों की विद्यालय में उपस्थिति पर सार्थक प्रभाव पाया गया, जबकि विद्यालय की क्षेत्रवार स्थिति (शहरी/ग्रामीण) का विद्यार्थियों की विद्यालय में उपस्थिति पर सार्थक प्रभाव नहीं पाया गया।

विद्यार्थी की लेखन दक्षता पर लिंग, जाति, परिवार की आय एवं इनके बीच अंतर्क्रिया के प्रभाव का अध्ययन

विद्यार्थियों की लेखन दक्षता पर लिंग, जाति, परिवार की आय एवं इनके बीच अंतर्क्रिया के प्रभावों का अध्ययन किया गया है। इसमें लिंग दो स्तर (बालक एवं बालिका), जाति के तीन स्तर (सामान्य जाति, पिछड़ी जाति तथा अनुसूचित जाति एव जनजाति) एवं परिवार की आय के तीन स्तर (उच्च, मध्यम, एवं निम्न आय परिवार) हैं। इसको घ्यान में रखते हुए प्रदत्तों का विश्लेषण 2 X 3 X 3 Factorial Design ANOVA सांख्यिकीय विधि के द्वारा किया गया है। इसके परिणाम तालिका-8 में नीचे दिये गए हैं:

तालिका-8

विद्यार्थियों की लेखन दक्षता के लिए प्रसरण विश्लेषण की 2 X 3 X 3 की Factorial Design ANOVA का सारांश

प्रसरण का स्रोत	मुक्तांश	वर्ग योग	औसत वर्ग योग	'F' अनुपात
लिंग (A)	1	1008.16	214.96	17.93 **
जाति (B)	2	429.92	109.96	3.82 *
परिवार की आय (C)	2	219.92	16.19	1.96
AxB	2	32.37	31.72	0.29
AxC	2	63.45	3.22	0.56
BxC	4	12.88	54.80	0.06
AxBxC	4	219.22	56.24	0.98
त्रुटि	1182	66470.43		
योग	1199			

विद्यार्थियों की लेखन दक्षता पर लिंग, जाति, परिवार की आय एवं इनके बीच अंतर्क्रिया के प्रभाव का अध्ययन करने पर लिंग तथा जाति का विद्यार्थियों की लेखन दक्षता पर सार्थक प्रभाव पाया गया, जबकि परिवार की आय; लिंग एवं जाति, लिंग एवं परिवार की आय, जाति एवं परिवार की आय तथा लिंग, जाति एवं परिवार की आय के बीच अंतर्क्रिया का विद्यार्थियों की लेखन दक्षता पर सार्थक प्रभाव नहीं पाया गया।

विद्यार्थियों की लेखन दक्षता पर परिवार की शिक्षा, परिवार के व्यवसाय, परिवार के आकार एवं इनके बीच अंतर्क्रिया के प्रभाव का अध्ययन

इस शोध कार्य का उद्देश्य विद्यार्थियों की लेखन दक्षता पर परिवार की शिक्षा, परिवार के व्यवसाय, परिवार के आकार एवं इनके बीच अंतर्क्रिया के प्रभावों का अध्ययन करना है। इसमें परिवार की शिक्षा, परिवार के व्यवसाय, परिवार के आकार के तीन-तीन स्तर हैं। इसको घ्यान में रखते हुए प्रदत्तों का विश्लेषण 3 X 3 X 3 की Factorial Design ANOVA सांख्यिकीय विधि द्वारा किया गया है। इसके परिणाम तालिका-9 में नीचे दिये गए हैं:

तालिका-9

विद्यार्थियों की लेखन दक्षता के लिए प्रसरण विश्लेषण की 3 X 3 X 3 की Factorial Design ANOVA का सारांश

प्रसरण का स्रोत	मुक्तांश	वर्ग योग	औसत वर्ग योग	'F' अनुपात
परिवार की शिक्षा (A)	2	1360.12	680.06	12.26 **
परिवार का व्यवसाय (B)	2	316.60	158.30	2.85 *
परिवार का आकार (C)	2	22.88	11.44	0.21
AxB	4	713.32	178.33	3.22 **
AxC	4	115.01	28.75	0.52
BxC	4	210.68	52.67	0.95
AxBxC	8	697.86	87.23	1.57
त्रुटि	1173	65051.29	55.46	
योग	1199			

विद्यार्थियों की लेखन दक्षता पर परिवार की शिक्षा, परिवार के व्यवसाय, परिवार के आकार एवं इनके बीच अंतर्क्रिया के प्रभाव का अध्ययन करने पर परिवार की शिक्षा, परिवार के व्यवसाय, परिवार के आकार और परिवार की शिक्षा एवं परिवार के व्यवसाय, परिवार की शिक्षा एवं परिवार के आकार, परिवार के व्यवसार एवं परिवार के आकर तथा परिवार की शिक्षा, परिवार के व्यवसाय एवं परिवार के आकर के बीचअंतर्क्रिया का विद्यार्थियों की लेखन दक्षता पर सार्थक प्रभाव नहीं पाया गया।

विद्यार्थियों की लेखन दक्षता पर विद्यालय की क्षेत्रवार, जिलेवार स्थिति, एवं इनके बीच अंतर्क्रिया के प्रभावों का अध्ययन

इस शोधकार्य का उद्देश्य विद्यार्थियों की लेखन दक्षता पर विद्यालय की क्षेत्रवार स्थिति (शहरी /ग्रामीण), विद्यालय की जिलेवार स्थिति एवं इनके बीच अंतर्क्रिया के प्रभावों का अध्ययन करना है। विद्यालय की क्षेत्रवार स्थिति के दो स्तर (शहरी एवं ग्रामीण) तथा विद्यालय की जिलेवार स्थिति के चार स्तर (अध्ययन में चयनित चारों जिले) हैं। इसको घ्यान में रखते हुए प्रदत्तों का विश्लेषण 2 X 4 X Factorial Design ANOVA सांख्यिकीय विधि द्वारा किया गया है। इसके परिणाम तालिका–10 में नीचे दिये गए हैं:

तालिका–10

विद्यार्थियों की लेखन दक्षता के लिए प्रसरण विश्लेषण की 2 X 4 की Factorial Design ANOVA का सारांश

प्रसरण का स्रोत	मुक्तांश	वर्ग योग	औसत वर्ग योग	'F' अनुपात
विद्यालय की क्षेत्रवार स्थिति (शहरी/ग्रामीण (A)	1	376.04	376.04	6.63 **
विद्यालय की जिलेवार स्थिति (B)	3	126.43	126.14	2.23
AxB	3	37.47	37.82	0.67
त्रुटि	1192	67572.38	56.69	
योग	1199			

विद्यार्थियों की लेखन दक्षता पर विद्यालय की क्षेत्रवार स्थिति (शहरी/ग्रामीण), विद्यालय की जिलेवार स्थिति एवं इनके बीच अंतर्क्रिया के प्रभाव का अध्ययन करने पर विद्यालय की क्षेत्रवार स्थिति(शहरी/ग्रामीण) का विद्यार्थियों की लेखन दक्षता पर सार्थक प्रभाव पाया गया, जबकि विद्यालय की जिलेवार स्थिति तथा क्षेत्रवार स्थिति (शहरी/ग्रामीण) एवं विद्यालय की जिलेवार स्थिति के बीच अंतर्क्रिया का विद्यार्थियों की लेखन दक्षता पर सार्थक प्रभाव नहीं पाया गया।

विद्यार्थियों के विद्यालय में ठहराव पर लिंग, जाति एवं इनके बीच अंतर्क्रिया के प्रभाव का अध्ययन

इस शोधकार्य का उद्देश्य विद्यार्थियों के विद्यालय में ठहराव पर लिंग, जाति एवं इनके बीच अंतर्क्रिया के प्रभावों का अध्ययन करना है। इसमें लिंग दो एवं जाति के तीन स्तर हैं। इसको घ्यान में रखते हुए प्रदत्तों का विश्लेषण 2 X 3 Factorial Design ANOVA सांख्यिकीय विधि के द्वारा किया गया है। इसके परिणाम तालिका-11 में नीचे दिये गए हैं:

तालिका-11

विद्यार्थियों के विद्यालय में ठहराव के लिए प्रसरण विश्लेषण की 2 X 3 की Factorial Design ANOVA का सारांश

प्रसरण का स्रोत	मुक्तांश	वर्ग योग	औसत वर्ग योग	'F' अनुपात
लिंग (A)	1	25.87	25.87	10.24 **
जाति (B)	2	37.51	18.76	7.43 **
AxB	2	2.62	1.31	0.52
त्रुटि	234	591.15		
योग	239			

विद्यार्थियों के ठहराव पर लिंग, जाति एवं इनके बीच अंतर्क्रिया के प्रभाव का अध्ययन करने पर लिंग और जाति का विद्यार्थियों के ठहराव पर सार्थक प्रभाव पाया गया,

जबकि लिंग एवं जाति के बीच अंतर्क्रिया का विद्यार्थियों के ठहराव पर सार्थक प्रभाव नहीं पाया गया।

विद्यार्थियों के विद्यालय में ठहराव पर परिवार की शिक्षा, परिवार के व्यवसाय एवं इनके बीच अंतर्क्रिया के प्रभाव का अध्ययन

इस शोधकार्य का उद्देश्य विद्यार्थियों के विद्यालय में ठहराव पर परिवार की शिक्षा, एवं परिवार के व्यवसाय एवं इनके बीच अंतर्क्रिया के प्रभावों का अध्ययन करना है। इसमें परिवार की शिक्षा एवं परिवार के व्यवसाय के तीन-तीन स्तर हैं। इसको घ्यान में रखते हुए प्रदत्तों का विश्लेषण 3X3 Factorial Design ANOVA सांख्यिकीय विधि द्वारा किया गया है। इसके परिणाम तालिका-12 में नीचे दिये गए हैं:

तालिका-12

विद्यार्थियों के विद्यालय में ठहराव के लिए प्रसरण विश्लेषण की 3 X 3 की Factorial Design ANOVA का सारांश

प्रसरण का स्रोत	मुक्तांश	वर्ग योग	औसत वर्ग योग	'F' अनुपात
परिवार की शिक्षा (A)	2	16.19	8.09	3.22 *
परिवार का व्यवसाय (B)	2	80.60	40.30	16.01 **
AxB	4	4.45	1.11	0.44
त्रुटि	351	883.51		
योग	360			

विद्यार्थियों के ठहराव पर परिवार की शिक्षा, परिवार के व्यवसाय एवं इनके बीच अंतर्क्रिया के प्रभाव का अध्ययन करने पर परिवार की शिक्षा और परिवार के व्यवसाय का विद्यार्थियों के ठहराव पर सार्थक प्रभाव पाया गया, जबकि परिवार की शिक्षा एवं परिवार के व्यवसाय के बीच अंतर्क्रिया का विद्यार्थियों के ठहराव पर सार्थक प्रभाव नहीं पाया गया।

विद्यार्थियों के विद्यालय में ठहराव पर परिवार की आय, परिवार के आकार एवं इनके बीच अंतर्क्रिया के प्रभाव का अध्ययन

इस शोधकार्य का उद्देश्य विद्यार्थियों के विद्यालय में ठहराव पर परिवार की आय, एवं परिवार के आकार एवं इनके बीच अंतर्क्रिया के प्रभावों का अध्ययन करना है। इसमें परिवार की आय एवं परिवार के आकार के तीन-तीन स्तर हैं। इसको घ्यान में रखते हुए प्रदत्तों का विश्लेषण 3 X 3 Factorial Design ANOVA सांख्यिकी विधि के द्वारा किया गया है। इसके परिणाम तालिका-13 में नीचे दिये गए हैं।

तालिका-13

विद्यार्थियों के विद्यालय में ठहराव के लिए प्रसरण विश्लेषण की 3X3 की Factorial Design ANOVA का सारांश

प्रसरण का स्रोत	मुक्तांश	वर्ग योग	औसत वर्ग योग	'F' अनुपात
परिवार की आय (A)	2	8.70	4.35	2.02
परिवार का आकार (C)	2	0.58	0.29	0.14
AxB	4	15.19	3.80	1.77
त्रुटि	351	754.25		
योग	359			

विद्यार्थियों के ठहराव पर परिवार की आय, परिवार के आकार एवं इनके बीच अंतर्क्रिया के प्रभाव का अध्ययन करने पर परिवार की आय और परिवार के आकार तथा परिवार की आय एवं परिवार के आकार के बीच अंतर्क्रिया का विद्यार्थियों के ठहराव पर सार्थक प्रभाव नहीं पाया गया।

निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन में उत्तर-प्रदेश राज्य के चित्रकूट मण्डल के जिलों के प्राथमिक विद्यालयों

में अध्ययनरत की शैक्षिक उपलब्धि, विद्यालय नियमितता (उपस्थिति), लेखन दक्षता, विषयवार उपलब्धि स्तर एवं ठहराव पर पड़ने वाले विभिन्न सामाजिक एवं आर्थिक कारकों के प्रभाव का अध्ययन करने का प्रयास किया गया है। इसमें सामाजिक आर्थिक कारकों के अंतर्गत लिंग, जाति, परिवार की आय, परिवार के व्यवसाय, परिवार की शिक्षा, परिवार के आकार, विद्यालय की क्षेत्रवार एवं जिलेवार स्थिति के प्रभाव को लिया गया है। अध्ययन में विद्यार्थियों की उपलब्धि, उपस्थिति, लेखन दक्षता एवं ठहराव पर विभिन्न सामाजिक एवं आर्थिक कारकों के प्रभाव को देखा गया है। इस अध्ययन का संक्षिप्त सार निम्नांकित है:

विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि पर सामाजिक आर्थिक कारकों का प्रभाव

शोध के प्रथम उद्देश्य में शैक्षिक उपलब्धि पर लिंग, जाति, परिवार की आय, परिवार की शिक्षा, परिवार के व्यवसाय, परिवार के आकार, विद्यालय की क्षेत्रवार, जिलेवार स्थिति एवं इनके बीच अंतर्क्रिया के सार्थक प्रभाव के अध्ययन को लिया गया है। इस अध्ययन में शैक्षिक उपलब्धि से आशय कक्षा 5 की वार्षिक परीक्षा में प्राप्त अंक के प्रतिशत से लिया गया है। अध्ययन में 'प्रसरण विश्लेषण' एवं 'माध्य' सांख्यिकी के आधार पर शैक्षिक उपलब्धि पर लिंग ($F=7.22$, $P=0.01$), परिवार की आय ($F=6.49$, $P=0.01$), परिवार की शिक्षा ($F=10.35$, $P=0.01$), परिवार के व्यवसाय ($F=14.34$, $P=0.01$), विद्यालय की क्षेत्रवार स्थिति ($F=3.57$, $P=0.05$), विद्यालय की जिलेवार स्थिति ($F=2.93$, $P=0.05$), और लिंग एवं जाति के बीच अंतर्क्रिया ($F=7.65$, $P=0.01$), जाति एवं परिवार की आय के बीच अंतर्क्रिया ($F=6.78$, $P=0.01$) तथा लिंग, जाति एवं परिवार के आय के बीच अंतर्क्रिया ($F=6.43$, $P=0.01$) का शैक्षिक उपलब्धि पर सार्थक प्रभाव पाया गया, जबकि जाति, परिवार के आकार तथा लिंग एवं परिवार की आय के बीच अंतर्क्रिया, परिवार की शिक्षा एवं परिवार के व्यवसाय के बीच अंतर्क्रिया, परिवार की शिक्षा एवं परिवार के आकार के बीच अंतर्क्रिया, परिवार के व्यवसाय एवं परिवार के आकार के बीच अंतर्क्रिया, विद्यालय की क्षेत्रवार एवं जिलेवार स्थिति के बीच अंतर्क्रिया तथा परिवार की शिक्षा, परिवार के व्यवसाय एवं परिवार के आकार के बीच अंतर्क्रिया का सार्थक प्रभाव शैक्षिक उपलब्धि पर नहीं पाया गया।

विद्यार्थियों की विद्यालय में उपस्थिति पर सामाजिक-आर्थिक कारकों का प्रभाव

शोध के द्वितीय उद्देश्य में विद्यार्थियों की विद्यालय में उपस्थिति पर लिंग, जाति, परिवार की आय, परिवार की शिक्षा, परिवार के व्यवसाय, परिवार के आकार, विद्यालय की क्षेत्रवार, जिलेवार स्थिति एवं इनके बीच अंतर्क्रिया के सार्थक प्रभाव के अध्ययन को लिया गया है। इस अध्ययन में उपस्थिति से तात्पर्य वार्षिक परीक्षा तक विद्यार्थी द्वारा विद्यालयी में उपस्थिति दिनों की संख्या के प्रतिशत से लिया गया है। इसमें उपस्थिति को कक्षा 5 में विद्यार्थी कितने दिन विद्यालय आया है, के प्रतिशत से लिया गया है। अध्ययन में 'प्रसरण विश्लेषण' एवं 'माध्य' सांख्यिकी के आधार पर विद्यार्थियों की विद्यालय में उपस्थिति पर लिंग (F=9.47, P=0.01), परिवार की आय (F=5.28 P=0.01), परिवार की जिलेवार स्थिति (F=26.35, P=0.01), और लिंग एवं परिवार की आय के बीच अंतर्क्रिया (F=4.21, P=0.01), तथा विद्यालय की क्षेत्रवार एवं जिलेवार स्थिति के बीच अंतर्क्रिया(F=4.55, P=0.01)का विद्यार्थियों की विद्यालय में उपस्थिति पर सार्थक प्रभाव पाया गया, जबकि जाति, परिवार की शिक्षा, परिवार के व्यवसाय, परिवार के आकार, विद्यालय की क्षेत्रवार स्थिति लिंग एवं जाति के बीच अंतर्क्रिया परिवार की शिक्षा, एवं परिवार के व्यवसाय के बीच अंतर्क्रिया, परिवार की शिक्षा एवं परिवार के आकार के बीच अंतर्क्रिया, परिवार के व्यवसाय एवं परिवार के आकार के बीच अंतर्क्रिया तथा परिवार की शिक्षा, परिवार के व्यवसाय एवं परिवार के आकार के बीच अंतर्क्रिया का सार्थक प्रभाव विद्यार्थियों की विद्यालय में उपस्थिति पर सार्थक प्रभाव नहीं पाया गया।

विद्यार्थियों की लेखन दक्षता पर सामाजिक आर्थिक कारकों का प्रभाव

शोध के तृतीय उद्देश्य में विद्यार्थियों की लेखन दक्षता पर लिंग,जाति, परिवार की आय, परिवार की शिक्षा, परिवार के व्यवसाय, परिवार के आकार, विद्यालय की क्षेत्रवार, जिलेवार स्थिति एवं इनके बीच अंतर्क्रिया के सार्थक प्रभाव के अध्ययन को लिया गया है। इस अध्ययन में लेखन दक्षता से आशय है कि विद्यार्थी द्वारा भाषा की लेखन दक्षता के लिए बनाये गये उपकरण के आधार पर कितने अंक प्राप्त किए, के प्रतिशत से लिया गया है। अध्ययन में 'प्रसरण विश्लेषण' एवं 'माध्य' सांख्यिकी के आधार पर विद्यार्थियों की लेखन दक्षता पर लिंग (F=17.93, P=0.01), जाति (F=3.82] P=0.01), परिवार

की शिक्षा (F=12.26, P=0.01), परिवार के व्यवसाय (F=2.85, P=0.05), विद्यालय की क्षेत्रवार स्थिति (F=6.63, P=0.01), तथा परिवार की शिक्षा एवं परिवार के व्यवसाय के बीच अंतर्क्रिया (F=3.22, P=0.01) का सार्थक प्रभाव पाया गया, जबकि परिवार की आय, परिवार के आकार, विद्यालय की जिलेवार स्थिति तथा लिंग एवं जति के बीच अंतर्क्रिया जाति एवं परिवार की आय के बीच अंतर्क्रिया, परिवार की शिक्षा एवं परिवार के आकर के बीच अंतर्क्रिया, परिवार के व्यवसाय एवं परिवार के आकार के बीच अंतर्क्रिया, विद्यालय की क्षेत्रवार एवं जिलेवार स्थिति के बीच अंतर्क्रिया तथा लिंग जाति एवं परिवार की आय के बीच अंतर्क्रिया तथा परिवार की शिक्षा, परिवार के व्यवसाय एवं परिवार के आकार के बीच अंतर्क्रिया का विद्यार्थियों की लेखन दक्षता पर सार्थक प्रभाव नहीं पाया गया।

विद्यार्थियों के ठहराव पर सामाजिक-आर्थिक कारकों का प्रभाव

शोध के चतुर्थ उद्देश्य में बच्चों के लिए ठहराव पर लिंग, जाति, परिवार की आय, परिवार की शिक्षा, परिवार के व्यवसाय, परिवार के आकार, विद्यालय की क्षेत्रवार, जिलेवार स्थिति एवं इनके बीच अंतर्क्रिया के सार्थक प्रभाव के अध्ययन को लिया गया है। इस अध्ययन में 'प्रसरण विश्लेषण' एवं 'माध्य' सांख्यिकी के आधार पर विद्यार्थियों के ठहराव पर लिंग (F=10.24, P=0.01), जाति (F=7.43, P=0.01), परिवार की शिक्षा (F=3.22, P=0.05), परिवार के व्यवसाय (F=160.01, P=0.01),का सार्थक प्रभाव पाया गया, जबकि परिवार की आय, परिवार का आकार तथा लिंग एवं जाति के बीच अंतर्क्रिया, परिवार की शिक्षा एवं परिवार के व्यवसाय के बीच अंतर्क्रिया, परिवार की आय एवं परिवार के आकार के बीच अंतर्क्रिया का सार्थक प्रभाव शैक्षिक उपलब्धि पर नहीं पाया गया।

संदर्भ

एडसिल, नई दिल्ली (2002) *रिसर्च एब्सट्रक्ट इन प्राईमरी एजूकेशन,* भाग प्रथम एवं द्वितीय, एडसिल नई दिल्ली

कौर, कुलदीप (1985) *भारत में शिक्षा 1781-1985 तक* (सेंटर फॉर रूरल रिसर्च एंड इण्डस्ट्रियल डेवलपमेंट)

गर्वमेंट ऑफ इंडिया, *कांस्टीट्यूशन ऑफ इंडिया,* गर्वमेंट प्रिटिंग प्रेस, दिल्ली

गैरिट, हेनरी ई. (1978) *शिक्षा एवं मनोविज्ञान में सांख्यिकी,* कल्याणी पब्लिशर्स

बुच, एम.बी. (1979) *सेकण्ड सर्वे ऑफ रिसर्च उन एजूकेशन,* सोसायटी फॉर एजूकेशनल डेवलपमेंट एंड रिसर्च, बड़ौदा

बुच, एम.बी. (1978-83) *थर्ड सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजूकेशन,* बड़ौदा

एन.सी.ई.आर.टी. नई दिल्ली *फोर्थ एवं फीफ्थ सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजूकेशन*

सीमैट, इलाहाबाद रिपोर्ट (2000) *रिसर्च इन बेसिक एजूकेशन*

भारत सरकार (2000), *सबके लिए शिक्षा,* मानव संसाधन विकास मंत्रालय नई दिल्ली

शिक्षा की प्रगति (2001-2004) शिक्षा निदेशालय, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद

वार्षिक आख्या, (1999-2000) उ.प्र. सभी के लिए शिक्षा परियोजना परिषद, लखनऊ

वार्षिक आख्या, (2000 से 03) उ.प्र. सभी के लिए शिक्षा परियोजना परिषद, लखनऊ

उत्तर प्रदेश सांख्यिकी की शिक्षा (1998-2003) राज्य शिक्षा संस्थान, उ.प्र. इलाहाबाद (उ.प्र)

बेसिक शिक्षा के महत्वपूर्ण आकंड़े (1998) बेसिक शिक्षा निदेशालय, उ.प्र. इलाहाबाद

सीमैट, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद (2002) *पहुंच एवं धारणा रिपोर्ट जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम* ii & iii

स्टेप रिपोर्ट, शैक्षिक सूचना प्रबंधन प्रणाली (2003-04) राज्य परियोजना कार्यालय, सभी के लिये शिक्षा, लखनऊ(उ.प्र.)

प्रगति रिपोर्ट जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम ii&iii (2001)

उ.प्र. सभी के लिए शिक्षा परियोजना परिषद, लखनऊ

व्हेयर डू वी स्टैण्ड नीपा रिपोर्ट (2002-03) राष्ट्रीय शैक्षिक नियोजन एवं प्रशास संस्थान, नई दिल्ली

रिसर्च एबस्ट्रेक्स (2001-04) राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद, लखनऊ,उ.प्र.

रिसर्च एबस्ट्रेक्स (1998-20030) राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन संस्थान नई दिल्ली

प्रो.एस. अग्रवाल (1998-2003) *प्रोग्राम टुअर्डस एक्सेस एण्ड रिटेनशन,* नीपा नई दिल्ली

सबके लिए शिक्षा विश्व मानीटरिंग रिपोर्ट (2004) संयुक्त राष्ट्र शैक्षिक, वैज्ञानिक एवं संस्कृति संगठन, यूनेस्को प्रकाशन

मानव विकास रिपोर्ट (2004) यूनाइटेड नेशन्स डवलपमेंट प्रोग्राम, आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय प्रेस

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 13, अंक 3, दिसंबर 2007

शोध टिप्पणी / संवाद

वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालयों के प्राचार्यों का नेतृत्व व्यवहार

जोधपुर संभाग का अध्ययन

शिरीष बालिया*

सारांश

नेतृत्व उस स्थिति को कहा जाता है जिसमें किसी वर्ग अथवा समाज का कोई व्यक्ति अपने विशिष्ट गुणों और समर्थ योजनाओं के कारण प्रमुखता प्राप्त कर लेता है और शेष सभी लोग उसके सुझावों, निर्देशों एवं योजनाओं का अनुकरण मात्र करते हैं। प्रत्येक समूह की अपनी समस्याएं होती हैं जिन्हें समूह का प्रत्येक सदस्य सुलझाने व समझाने में समर्थ नहीं होता है। ऐसा व्यक्ति जो इन समस्याओं को सुलझाने का प्रयास करता है, समूह के सदस्यों को रक्षक के रूप में दिखाई देता है। भिन्न-भिन्न वैज्ञानिकों के गुणों के बारे में अपने मत दिए हैं जिनसे यह पता चलता हे कि नायक केवल शारीरिक गुणों से सम्पन्न व्यक्ति नहीं होता बल्कि उस व्यक्ति में शारीरिक शक्ति के साथ-साथ बौद्धिक योग्यता और आकर्षक व्यक्तित्व का होना आवश्यक होता है। नेतृत्व मानव समाज में अत्यन्त मूल्यवान माना जाता है।

शोध अध्ययन का उद्देश्य जोधपुर संभाग के सीनियर सैकेण्डरी विद्यालयों के प्राचार्यों के नेतृत्व व्यवहार का अध्ययन करना है, जोधपुर संभाग के छः जिलों से 4-4 सीनियर सैकेण्डरी विद्यालयों का चयन किया गया। प्रत्येक विद्यालय से 25 अध्यापकों के आधार पर कुल 600 अध्यापकों में (300 पुरुष एवं 300 महिला) अध्यापकों द्वारा नेतृत्व व्यवहार प्रश्नावली के जरिए संस्था

* प्राचार्य, शाह गोवर्धनलाल काबरा शिक्षक महाविद्यालय (सी.टी.ई.), जोधपुर

प्रधान के नेतृव्व व्यवहार को ज्ञात किया गया।

परिणामों से ज्ञात हुआ कि नेतृत्व–व्यवहार प्रमापनी के समग्र आयामों पर समस्त अध्यापकों द्वारा प्राप्त आंकड़ों के आधार पर संस्था प्राचार्य का नेतृत्व व्यवहार कभी–कभी प्रकट होता है। पुरुष तथा महिला प्राचार्यों में प्रत्येक आयाम पर नेतृत्व व्यवहार में चार आयामों (01) प्रतिनिधित्व, (02) स्वतंत्रता को सहना, (03) भविष्य वर्णन संबंधी सत्यता (04) पूर्ण करने की क्रिया पर पुरुष प्राचार्यों का नेतृत्व–व्यवहार महिलाओं की अपेक्षा अधिक आया है। शेष आयामों पर दोनों में कोई सार्थक अंतर नहीं है। समग्र नेतृत्व–व्यवहार पर भी पुरुष एवं महिला प्राचार्यों में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

नेतृत्व किसी संस्था अथवा संगठन के कारगर संचालन के लिए मूलभूत धारणा भी है और साथ ही पकड़ में न आने वाली धारणा भी है। किसी भी संस्था के नेतृत्वकर्मी के कार्यकलाप का ढंग लोकतांत्रिक होना चाहिए जिसमें सभी घटकों की सफलता पर भरपूर जोर दिया जाता हो, साथ ही सबसे पहले उस स्वतंत्रता का स्थान होता है जो संकाय को प्राप्त होती है क्योंकि संकाय किसी अकादमिक संस्था की रीढ़, उसकी शक्ति और परिसम्पति होता है। इस स्वतंत्रता की आदर्श स्थिति यह है कि यह सबको मिले। विचारों, भावनाओं और व्यवहारों की मुक्त अभिव्यक्ति का वातावरण बनाना और इसे संजोकर रखा जाना चाहिए। स्वतंत्रता के साथ ही साथ दायित्व और आत्मसमीक्षा के गुण भी निश्चित रूप से जुड़े होते हैं, अत: किसी व्यक्ति को जितनी अधिक स्वतंत्रता प्राप्त होती है उसका दायित्व भी उतना ही अधिक होता है, अत: संस्था प्रधान को अपनी स्वतंत्रता का उपयोग उतने ही उत्तरदायित्व और आत्मानुशासन के साथ करना चाहिए।

लापियर्सन (सामाजिक मनोविज्ञान) ने लिखा है कि ''नेतृत्व एक प्रकार का व्यवहार है, जो नेता (नेतृत्व/संस्था प्रमुख) में ही पाया जाता है, यह व्यवहार अन्य व्यक्तियों के व्यवहार को अधिकतम प्रभावित करता है एवं नायक/निदेशक उनके व्यवहारों से उतना प्रभावित नहीं होता।'' नेतृत्व उस स्थिति को कहा जाता है, जिसमें किसी वर्ग अथवा समाज का कोई व्यक्ति अपने विशिष्ट गुणों और समर्थ योजनाओं के कारण प्रमुखता प्राप्त कर लेता है और शेष सभी लोग उसके सुझावों, निर्देशों एवं योजनाओं का अनुकरण मात्र करते हैं। प्रत्येक समूह की अपनी समस्याएं होती हैं जिन्हें समूह का प्रत्येक सदस्य सुलझाने व समझाने में समर्थ नहीं होता है। ऐसे व्यक्ति जो इन

समस्याओं को सुलझाने का प्रयास करते हैं समूह के सदस्यों को रक्षक के रूप में दिखाई देते हैं। समूह के सदस्य समस्या का समाधान करने वाले व्यक्ति के निकट एकत्र होने लगते हैं और उनके निर्देशानुसार कार्य करने को तत्पर रहते हैं। इसी के साथ नेतृत्व प्रारम्भ हो जाता है। अत: समूह की समस्याओं को हल करने के लिए आवश्यक ज्ञान नेतृत्व की स्थिति दिलाने में सहायक होता है।

भिन्न-भिन्न वैज्ञानिकों ने नेता के गुणों के बारे में अपने मत दिये हैं, जिनसे यह पता चलता है, कि नेता केवल शारीरिक गुणों से संपन्न व्यक्ति नहीं होता, बल्कि उस व्यक्ति में शारीरिक शक्ति के साथ-साथ बौद्धिक योग्यता और आकर्षक व्यक्तित्व का होना आवश्यक होता है। नेतृत्व मानव समाज में अत्यन्त मूल्यवान माना जाता है।

नेतृत्व के बारे में अनेक अध्ययन किये गये हैं। 1945 से पूर्व में किये गये अध्ययनों की मान्यता यह थी कि मानव को समूहों- नायक और अन्य सामान्य जनता में विभक्त किया जा सकता है। नायक में कुछ विशेष गुण के कारण कुछ विशेष क्षमता होती है, जिसके कारण वह नेतृत्व करता है। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि ''नायक जन्म लेते हैं विकसित नहीं होते हैं'' स्टागडिल ने नेतृत्व को गुणों के आधार पर स्पष्ट किया तथा लगभग 124 अध्ययनों पर विचार किया और लगभग 15-20 अध्ययनों से यह सिद्ध हुआ है कि ''नेतृत्व करने वाला व्यक्ति- 1. बुद्धि, 2. योग्यता, 3. उत्तरदायित्व वहन करने, 4. क्रिया तथा सामाजिक सहयोग एवं योग्यता कौशल, 5. सामाजिक, आर्थिक स्थिति में अन्य व्यक्तियों से उच्च रहता है तथा नायक की कुशलता व क्षमता उन स्थितियों की मांग द्वारा निश्चित की जाती है जिनमें वह कार्य करता है।''

नेतृत्व के लिए यह आवश्यक है कि नायक एक समूह के सदस्य के रूप में अपना संतोषजनक सहयोग (बजाय व्यक्तिगत महत्व बनाने के) समूह के हित में प्रदान करे। सफल नेतृत्व के लिए आवश्यकता तथा परिस्थिति के अनुसार परिवर्तन की आवश्यकता रहती है। क्रेच तथा क्रेचफील्ड की धारणा थी कि नेतृत्व का संबंध उन व्यवहारों से है, जो समूह को उसके लक्ष्यों को प्राप्त करने में सहयोग देते हैं तथा सदस्यों की स्थिति को सुधारते हैं एवं उनकी आवश्यकताओं की तुष्टि करते हैं। कुछ अध्ययनों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि जिस तरह मानव समूह विभिन्न प्रकार के होते हैं उसी प्रकार नेतृत्व की शैलियां भी तरह-तरह की होती हैं।

आयोबा विश्वविद्यालयों के किए गऐ अध्ययनों के अनुसार नेतृत्व की शैलियों का तीन वर्गीय विभाजन- 1. निरंकुश, 2. प्रजातांत्रिक और 3. सर्वमुक्त किया जा सकता है।

अत: किसी विद्यालय के वातावरण में विद्यालय प्रणाली के संचालन में अध्यापकों की भागीदारी और योगदान की तरह प्राचार्य की नेतृत्व शैली का भी कुछ योगदान होता है। प्राचार्य की शैली के कारण विद्यालय में एक खास प्रकार का वातावरण विकसित होता है और यह वातावरण विद्यालय के संचालन में सहायक होता है।

अध्ययनों के फलस्वरूप नेतृत्व के बारे में जो बातें स्पष्ट होती हैं, वे इस प्रकार हैं:

1. नेतृत्व पहले से निर्मित नहीं किया जा सकता है। विभिन्न समूह, उनके भिन्न-भिन्न प्रकार के परस्पर व्यवहार, बदलते लक्ष्य एवं उद्देश्य विभिन्न प्रकार की शक्तियाँ आदि कारक भिन्न-भिन्न प्रकार के नेतृत्व को जन्म देते हैं।
2. नेतृत्व किसी पद या प्रास्थितिजन्य नहीं है बल्कि यह समूह में परस्पर व्यवहारजन्य होता है। इस बात पर निर्भर करता है कि नायक व्यवहार कैसे करता है।
3. नेतृत्व गुणों पर ही नहीं बल्कि परिस्थितियों द्वारा निर्धारित होता है, क्योंकि गुणों के आधार पर एक स्थिति में सफल नेतृत्व प्रदान करने वाला, दूसरी अथवा बदलती परिस्थिति में भी सफल नेतृत्व दे सकेगा यह आवश्यक नहीं है।

अत: हम यह कह सकते हैं कि नेतृत्व एक विकसित कौशलों का सम्मिश्रण है, जो दूसरों को प्रभावित करने का प्रयास करता है या दूसरों के व्यवहारों को बदलता है, ताकि किसी भी संगठन या व्यक्ति के उद्देश्यों की पूर्ति हो सके।

उद्देश्य

1. जोधपुर संभाग के सीनियर सैकेण्डरी विद्यालयों के प्राचार्यों के आयामानुसार एवं समग्र नेतृत्व-व्यवहार का अध्ययन करना।
2. जोधपुर संभाग के पुरुष सीनियर सैकेण्डरी विद्यालयों के प्राचार्यों के आयामानुसार एवं समग्र नेतृत्व-व्यवहार का अध्ययन करना।

3. जोधपुर संभाग के महिला सीनियर सैकेण्डरी विद्यालयों के प्राचार्यों के आयामानुसार एवं समग्र नेतृत्व-व्यवहार का अध्ययन करना।
4. जोधपुर संभाग के पुरुष एवं महिला सीनियर सैकेण्डरी विद्यालयों के प्राचार्यों के आयामानुसार एवं समग्र नेतृत्व-व्यवहार का अध्ययन करना।

परिकल्पनाएं

1. जोधपुर संभाग के सीनियर सैकेण्डरी विद्यालयों के प्राचार्यों के आयामानुसार एवं समग्र नेतृत्व-व्यवहार सामान्य होगा।
2. जोधपुर संभाग के पुरुष सीनियर सैकेण्डरी विद्यालयों के प्राचार्यों के आयामानुसार एवं समग्र नेतृत्व-व्यवहार सामान्य होगा।
3. जोधपुर संभाग के महिला सीनियर सैकेण्डरी विद्यालयों के प्राचार्यों के आयामानुसार एवं समग्र नेतृत्व-व्यवहार सामान्य होगा।
4. जोधपुर संभाग के पुरुष एवं महिला सीनियर सैकेण्डरी विद्यालयों के प्राचार्यों के आयामानुसार एवं समग्र नेतृत्व-व्यवहार में कोई सार्थक अन्तर नहीं होगा।

तालिका-1

जोधपुर संभाग के जिलेवार सीनियर सैकेण्डरी विद्यालयों के अध्यापक-अध्यापिकाओं का न्यादर्श रूप से संख्यात्मक विवरण

क्र.	जिला	विद्यालय का नाम	संख्या	कुल	लिंग
01.	जोधपुर	1. रा.उ.मा.वि. महात्मा गांधी 2. रा.उ.मा.वि. नवीन 3. रा.बा.उ.मा.वि. राजमहल 4. रा.बा.उ.मा.वि. जालोरी गेट	25 25 25 25	100	पुरुष महिला
02.	पाली	1. रा.वि., बागड़ 2. रा.वि., रोहट 3. रा.वि., बालिया 4. रा.वि., जैतारण	25 25 25 25	100	पुरुष महिला

क्र.	जिला	विद्यालय का नाम	संख्या	कुल	लिंग
03.	सिरोही	1. रा.उ.मा.वि. सिरोही 2. रा.उ.मा.वि. शिवगंज 3. रा.उ.मा.वि. सिरोही 4. रा.उ.मा.वि. शिवगंज	25 25 25 25	100	पुरुष महिला
04.	सिरोही	1. रा.उ.मा.वि. जालोर 2. रा.उ.मा.वि. (शहरी) जालोर 3. रा.बा.उ.मा.वि. जालोर 4. रा.बा.उ.मा.वि. बागरा	25 25 25 25	100	पुरुष महिला
05.	बाड़मेर	1. रा.उ.मा.वि. बाड़मेर 2. रा.उ.मा.वि. बालोतरा 3. रा.बा.उ.मा. विद्यालय 4. रा.बा.उ.मा. विद्यालय	25 25 25 25	100	पुरुष महिला
06.	जैसलमेर	1. रा.उ.मा.वि. जैसलमेर 2. रा.उ.मा.वि. मोहनगढ़ 3. रा.बा.उ.मा.वि. जैसलमेर 4. रा.बा.उ.मा.वि. पोकरण	25 25 25 25	100	पुरुष महिला

न्यादर्श

शोध अध्ययन के लिए जोधपुर संभाग के 24 सीनियर सैकेण्डरी विद्यालयों से कुल 600 अध्यापकों का चयन किया गया। प्रत्येक विद्यालय से 25 पुरुष एवं 25 महिला अध्यापकों का चयन किया गया।

परिसीमन

शोध अध्ययन के लिए निम्न प्रकार से सीमांकन किया गया :

1. प्रस्तुत शोध अध्ययन में जोधपुर संभाग के राजकीय सीनियर सैकेण्डरी विद्यालयों को ही चयनित किया गया।

2. प्रस्तुत शोध अध्ययन में सीनियर सैकेण्डरी विद्यालयों में कार्यरत अध्यापक एवं अध्यापिकाओं को ही लिया गया।
3. अध्ययन में प्रत्येक जिले से चार विद्यालयों को ही लिया गया।
4. अध्ययन में प्रत्येक विद्यालय से 25 अध्यापकों का चयन किया गया।
5. प्रत्येक जिले से दो पुरुष विद्यालय एवं दो महिला विद्यालयों के आधार पर 300 पुरुष एवं 300 महिला अध्यापकों का चयन किया गया।
6. अध्ययन में नेतृत्व-व्यवहार प्रमापनी, प्रश्नावली का प्रयोग किया गया।

प्रयुक्त विधि

शोध अध्ययन की सफलता में अपनाई गई अध्ययन विधि का अत्यधिक आधारभूत महत्व है। शिक्षा के क्षेत्र में विस्तृत समस्याओं के अध्ययन में अनेक विधियों को प्रयुक्त किया जाता है। प्रस्तुत अध्ययन में सर्वेक्षण विधि का चयन किया गया।

सांख्यिकी

इस शोध अध्ययन में प्रश्नावली द्वारा प्राप्त अंकों का आवृत्ति-विवरण तैयार किया गया। इस आवृत्ति-विवरण के आधार पर मध्यमान, प्रमाप-विचलन तथा दो समूहों से प्राप्त मध्यमानों के बीच अन्तर की सार्थकता की जाँच करने के लिए क्रान्तिक अनुपात का प्रयोग किया गया।

शोध अध्ययन में प्रयुक्त उपकरण

शोधकर्ता ने इस समस्या का अध्ययन करने के लिए नेतृत्व व्यवहार प्रश्नावली का प्रयोग किया है जिसका निर्माण एम.स्टोकडिल ने (1963) किया था। इसे संक्षिप्त में एल.बी.डी.क्यू. कहते हैं। इस प्रश्नावली का प्रयोग व्यक्तिगत अथवा सामूहिक, दोनों रूपों में किया जा सकता है। इस नेतृत्व व्यवहार प्रश्नावली में 12 आयाम और 100 पद हैं जो इस प्रकार है :

1. प्रतिनिधित्व
2. मांग का समाधान
3. अनिश्चितता
4. हृदयग्राह्यता

5. प्रारंभिक संरचना
6. स्वतंत्रता
7. भूमिका का अनुभव
8. सोच-विचार
9. उत्पादन पर बल
10. भविष्य वर्णन संबंधी सत्यता
11. पूर्ण करने की क्रिया
12. उच्च मार्ग निर्धारण करना

नेतृत्व व्यवहार प्रश्नावली इस प्रकार 12 आयामों के आधार पर 10 पदों में बनी है। विभिन्न आयामों के अन्तर्गत आने वाले पदों का उल्लेख तालिका-2 में किया गया है-

तालिका-2

क्र. सं.	**आयाम**	**पदों की संख्या**	**पदों के नम्बर**
01.	प्रतिनिधित्व	05	1,11,21,31,41
02.	मांग का समाधान	05	51,61*,71,81,91*
03.	अनिश्चितता	10	2,12*,22,32,42*,52,62*,72,82,92*
04.	हृदयग्राह्यता	10	3,13,23,33,43,53*,63,73,83,93
05.	प्रारंभिक संरचना	10	4,14,24,34,44,54,64,74,84,94
06.	स्वतंत्रता	10	5,15,25,35,45,55,65*,75,85,95
07.	भूमिका का अनुभव	10	6,*16*,26*,36*,46*,56*,66*,76,86,96,
08.	सोच-विचार	10	7,17,27,37,47,57*,67,77,87*,97*
09.	उत्पादन पर बल	10	8,18,28,38,48,58,68*,78,88,98
10.	भविष्य वर्णन संबंधी सत्यता	05	9,29,49,59,89
11.	पूर्ण करने की क्रिया	05	19,39,69,89
12.	उच्च मार्ग निर्धारण करना	10	10,20,30,40,50,60,70,80,90,100

प्रस्तावना

प्रश्नावली में पांच बिन्दु वाली स्केल जिन पर अ,ब,स,द,इ लिखे हैं, उनमें से किसी एक पर सहमति अंकित करनी है। इसे भरने में 40-40 मिनट लगते हैं।

अंकित प्रक्रिया

नेतृत्व-व्यवहार प्रश्नावली में उत्तर अंकन के लिए निम्न आधार पर अंक दिए गए:

अ ब स द इ

5 4 3 2 1

अ पर गोला करने पर 5 अंक व इ पर गोला करने पर 1 अंक दिए जाऐंगे। प्रश्नावली में 20 तारांकित पर हैं, इन 20 पदों का अंकल इस प्रकार किया गया:

अ ब स द इ

6 5 4 3 2 1

प्रश्नावली में अधिकतम 500 और न्यूनतम 100 अंक हो सकते हैं।

तथ्यों का विश्लेषण

1. जोधपुर संभाग के सीनियर सैकेण्डरी विद्यालयों के प्राचार्यों का आयामानुसार एवं कुल नेतृत्व-व्यवहार पर अध्यापकों द्वारा प्राप्त अंकों की गणना:-

तालिका-3

अध्यापकों की संख्या (पुरुष एवं महिला)	मध्यमान	प्रमाप - विचलन
600	277,21	33.17

तालिका-3 के अनुसार जोधपुर संभाग के सीनियर सैकेण्डरी विद्यालयों के प्राचार्यों का आयामानुसार एवं समग्र नेतृत्व-व्यवहार का निर्धारण उनके विद्यालयों के पुरुष एवं महिला अध्यापकों द्वारा निर्धारित किया गया। समग्र नेतृत्व-व्यवहार प्रश्नावली का मध्यमान 277.21 आया है जो यह स्पष्ट करता है कि प्राचार्यों का नेतृत्व-व्यवहार सभी आयामों के प्रति ''कभी-कभी'' रहता है।

2. जोधपुर संभाग के पुरुष एवं महिला सीनियर सैकेण्डरी विद्यालयों के आयामानुसार एवं कुल नेतृत्व-व्यवहार पर (पुरुष एवं महिला) अध्यापकों द्वारा प्राप्त अंकों की तुलना :

तालिका-4

क्र. सं.	आयाम	सी.सै.वि. पुरुष मध्यमान	प्रमाप विचलन	सी.सै.वि. महिला मध्यमान	प्रमाप विचलन	क्रांतिक अनुपात
01.	प्रतिनिधित्व	14.59	2.28	14.12	1.75	2.83*
02.	मांग का समाधान	14.62	2.08	14.26	1.76	2.29
03.	अनिश्चितता	24.75	2.05	24.77	1.60	.13
04.	हृदयग्राह्यता	24.98	2.12	24.88	1.81	.62
05.	प्रारंभिक संरचना	25.52	2.32	25.88	2.11	1.99
06.	स्वतंत्रता	25.66	2.32	26.34	2.10	3.76
07.	भूमिका का अनुभव	25.45	2.31	25.86	2.27	2.19
08.	सोच-विचार	25.17	2.37	25.53	2.46	1.82
09.	उत्पादन पर बल	25.64	2.37	25.53	2.46	1.82
10.	भविष्य वर्णन संबंधी सत्यता	15.83	2.38	14.86	1.65	4.17*
11.	पूर्ण करने की क्रिया	14.92	2.10	14.44	1.27	3.39*
12.	उच्च मार्ग निर्धारण करना	33.52	2.09	33.23	1.65	1.76
13.	समग्र नेतृत्व-व्यवहार	270.62	8.06	270.28	7.10	.54

जोधपुर संभाग के पुरुष एवं महिला सीनियर सैकेण्डरी विद्यालयों के प्राचार्यों का आयामानुसार एवं कुल नेतृत्व-व्यवहार में सार्थक अन्तर है या नहीं यह ज्ञात करने का प्रयास किया गया। सार्थकता की जांच के लिए क्रान्तिक अनुपात के आधार –01 सार्थकता विश्वास स्तर पर पाया गया :

1. **प्रतिनिधित्व :** तालिका–4 के अनुसार पुरुष प्राचार्यों के प्रतिनिधित्व आयाम का मध्यमान 14.59 तथा महिला प्रचार्यों का मध्यमान 14.12 है। इससे प्रतीत होता है कि पुरुष प्रचार्यों का प्रतिनिधित्व महिला की अपेक्षा अच्छा है लेकिन दोनों के मध्यमानों का अंतर 0.47 है, जिसका क्रान्तिक अनुपात मूल्य 2.83 है। यह मूल्य 0.01 विश्वास स्तर के मूल्य 2.58 से अधिक है, अत: यह अन्तर सार्थक है।

2. **मांग का समाधान :** पुरुष एवं महिला प्राचार्यों के ''मांग के समाधान'' आयाम पर मध्यमान क्रमश: 14.62 एवं 14.26 आया है। इससे स्पष्ट होता है कि पुरुष प्राचार्य, महिला प्राचार्यों की अपेक्षा इस आयाम पर अधिक जागरूक है, दोनों के मध्यमानों का अन्तर 0.36 है, जिसका क्रान्तिक अनुपात मूल्य 2.29 है। यह मूल्य 0.01 विश्वास स्तर के मूल्य 2.58 से कम है, जो स्पष्ट करता है कि यह अन्तर सार्थक नही है।

3. **अनिश्चितता :** नेतृत्व प्रश्नावली के ''अनिश्चितता'' आयाम पर पुरुष एवं महिला प्राचार्यों का मध्यमान क्रमश: 24.75 एवं 24.77 आया है और दोनों के मध्यमानों का अन्तर 0.02 है, इससे स्पष्ट होता है कि इस आयाम पर पुरुष एवं महिला प्राचार्यों की स्थिति लगभग समान है और इस अन्तर का क्रान्तिक अनुपात 0.13 है, जो 0.01 विश्वास स्तर के मूल्य 2.58 से कम है, अत: कहा जा सकता है कि अन्तर सार्थक नहीं है।

4. **हृदयाग्राह्यता :** पुरुष प्राचार्यों के ''हृदयग्राह्यता'' आयाम का मध्यमान 24.98 तथा महिला प्राचार्यों का मध्यमान 24.88 है। दोनों के मध्यमानों का अन्तर 0.10 है जिसका क्रांतिक अनुपात मूल्य 0.62 है। यह मूल्य 0.01 विश्वास स्तर के मूल्य 2.58 से कम है, अत: स्पष्ट होता है कि पुरुष एवं महिला प्राचार्यों के ''हृदयाग्राह्यता आयाम पर अन्तर सार्थक नही है।

5. **प्रारंभिक संरचना :** पुरुष प्राचार्यों का ''प्रारंभिक संरचना'' आयाम पर मध्यमान 25.52 तथा महिला प्राचार्यों का मध्यमान 25.88 आया है, दोनों के मध्यमानों का अन्तर 0.36 है जिनका क्रान्तिक अनुपात मूल्य 1.99 है। यह मूल्य 0.01 विश्वास स्तर के मूल्य 2.58 से कम है जो स्पष्ट करता है कि पुरुष एवं महिला प्राचार्यों में इस आयाम पर अन्तर सार्थक नहीं है।

6. **स्वतंत्रता :** पुरुष एवं महिला प्राचार्यों का ''स्वतंत्रता'' आयाम पर मध्यमान

क्रमशः 25.66 एवं 26.34 आया है, दोनों के मध्यमानों का अन्तर 0.68 है जिसका क्रान्तिक अनुपात मूल्य 3.76 है। यह मूल्य 0.01 विश्वास स्तर के मूल्य 2.58 से बहुत अधिक है, अतः स्पष्ट होता है कि पुरुष एवं महिला प्राचार्यों में इस आयाम पर अन्तर सार्थक है।

7. **भूमिका का अनुभव :** पुरुष प्राचार्यों का ''भूमिका का अनुभव'' आयाम पर मध्यमान 25.45 तथा महिला प्राचार्यों का मध्यमान 25.86 है, दोनों में मध्यमानों में अंतर 0.41 है जिसका क्रांतिक अनुपात मूल्य 2.19 है। यह मूल्य 0.01 विश्वास स्तर के मूल्य 2.58 से कम है। अतः कहा जा सकता है कि पुरुष एवं महिला प्राचार्यों के इस आयाम पर अंतर सार्थक नहीं है।

8. **सोच-विचार :** पुरुष एवं महिला प्राचार्यों का ''सोच-विचार'' आयाम पर मध्यमान क्रमशः 25.17 तथा 25.53 आया है। दोनों के मध्यमानों का अंतर 0.36 है जिसका क्रांतिक अनुपात मूल्य 1.82 है। यह मूल्य 0.01 विश्वास स्तर के मूल्य 2.58 से कम है, जिससे स्पष्ट होता है कि इस आयाम पर पुरुष एवं महिला प्राचार्यों में अंतर सार्थक नहीं है।

9. **उत्पादन पर बल :** पुरुष प्राचार्यों का ''उत्पादन पर बल'' आयाम पर मध्यमान 25.46 तथा महिला प्राचार्यों का मध्यमान 26.03 है। दोनों मध्यमानों में अंतर 0.39 है, जिसका क्रांतिक अनुपात मूल्य 2.05 है। यह मूल्य 0.01 विश्वास स्तर के मूल्य 2.58 से कम है जो स्पष्ट करता है कि पुरुष एवं महिला प्राचार्यों के इस आयाम पर अंतर सार्थक नहीं है।

10. **भविष्य वर्णन संबंधी सत्यता :** पुरुष एवं महिला प्राचार्यों का नेतृत्व-व्यवहार प्रश्नावली के ''भविष्य वर्णन संबंधी सत्यता'' आयाम पर मध्यमान क्रमशः 15:83 एवं 14.96 है। दोनों मध्यमानों का अन्तर 0.97 है। 0.01 विश्वास स्तर पर इसके अन्तर की सार्थकता का पता लगाने के लिए क्रांतिक अनुपात निकाला गया जो 4.17 आया है, जो विश्वास स्तर के मूल्य 2.58 से बहुत अधिक है, जो अन्तर की सार्थकता को स्पष्ट करता है। अतः कहा जा सकता है कि इस आयाम पर पुरुष प्राचार्य महिला प्राचार्यों से अधिक जागरूक हैं।

11. **पूर्ण करने की क्रिया :** पुरुष एवं महिला प्राचार्यों का आयाम ''पूर्ण करने की क्रिया'' पर मध्यमान क्रमशः 14.92 तथा 14.44 आया है। मध्यमानों में अन्तर

0.48 है, जिसका क्रांतिक अनुपात मूल्य 3.39 आया है। 0.01 विश्वास स्तर पर यह सारणी मूल्य 2.58 से बहुत अधिक है, जो अन्तर की सार्थकता को स्पष्ट करता है, अर्थात् ''पूर्ण करने की क्रिया'' पर पुरुष प्राचार्य महिला प्राचार्यों से अधिक सफल रहते हैं।

12. **उच्च मार्ग निर्धारण :** नेतृत्व-व्यवहार के इस ''उच्च मार्ग निर्धारण करना'' आयाम पर पुरुष प्राचार्यों का मध्यमान 33.52 तथा महिला प्राचार्यों का मध्यमान 33.23 है। मध्यमानों में अन्तर 19 है जिसका क्रांतिक अनुपात मूल्य 1.76 है। यह मूल्य 0.01 विश्वास स्तर के मूल्य 2.28 से कम है जो स्पष्ट करता है कि इस आयाम में पुरुष एवं महिला प्राचार्यों में अन्तर सार्थक नहीं हैं।

13. **समग्र नेतृत्व-व्यवहार :** तालिका-4 के अनुसार ''समग्र नेतृत्व-व्यवहार'' आयाम पर पुरुष एवं महिला प्राचार्यों का मध्यमान क्रमशः 270.62 तथा 270.28 आया है। दोनों के मध्यमानों में अन्तर 34 है जिसका क्रांतिक अनुपात मूल्य 0.54 है, यह मूल्य 0.01 विश्वास स्तर के मूल्य 2.58 से बहुत कम है, जो यह स्पष्ट करता है कि पुरुष एवं महिला प्राचार्यों के समग्र नेतृत्व-व्यवहार में विशेष अन्तर नहीं है।

निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध अध्ययन का उद्देश्य जोधपुर संभाग के सीनियर सैकेण्डरी विद्यालयों के प्राचार्यों के नेतृत्व व्यवहार का अध्ययन करना है। जोधपुर संभाग के 6 जिलों से 4-4 सीनियर सैकेण्डरी विद्यालयों का चयन किया गया। प्रत्येक विद्यालय से 25 अध्यापकों के आधार पर कुल 600 अध्यापकों में (300 पुरुष एवं 300 महिला) अध्यापकों द्वारा नेतृत्व व्यवहार प्रश्नावली के जरिए संस्था प्रधान के नेतृत्व व्यवहार को ज्ञात किया गया।

परिणामों से ज्ञात हुआ कि नेतृत्व व्यवहार प्रमापनी के समग्र आयामों पर समस्त अध्यापकों द्वारा प्राप्त आंकड़ों के आधार पर संस्था प्राचार्य का व्यवहार कभी-कभी रहता है। पुरुष तथा महिला प्राचार्य में प्रत्येक आयाम पर नेतृत्व व्यवहार में 4 आयामों- (1) प्रतिनिधित्व, (2) स्वतंत्रता, (3) भविष्य वर्णन संबंधी सत्यता, (4) पूर्ण करने की क्रिया पर पुरुष प्राचार्यों का नेतृत्व व्यवहार महिलाओं की अपेक्षा अधिक आया है। शेष

आयामों पर दोनों में कोई सार्थक अन्तर नही है। समग्र नेतृत्व व्यवहार पर भी पुरुष एवं महिला प्राचार्यों में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

संदर्भ

अग्रवाल, वाई.पी. (1988) : ''स्टेटिस्टिक्स मैथड्स कन्सेप्ट्स एप्लीकेशन एण्ड कम्प्यूटेशन'', स्टार्लिंग पब्लिशर्स प्रा. लि., नई दिल्ली, पृ. 134–136

आनन्द, एस.पी. (1974) : ''द हायर सैकेण्डरी स्कूल प्रिंसिपल एण्ड व्यूड बाई टीचर्स'' *एजूकेशन वाल्यूम* VIII नंबर–2, पृ. 30–35

ईस्टन, जे.एच. (1978) : ''द रिलेशनशिप्स बिटविन द सुपरीटेन्ड्स मैनेजमेंट बिहेवियर, एलिमेन्टरी एण्ड सैकेण्डरी प्रिंसिपल'' रॉल एडमिनिस्ट्रेशन बिहेवियर एण्ड लीडरशिप, *डिजर्टेशन एब्स्ट्रेक्स,* नं. 1 वाल्यूम 39, जुलाई पृ. 33–ए

गिब्स, जे.आर. (1969) ''डाइनेमिक्स ऑफ लीडरशिप'', इन फ्रेड, डी. कारवर एण्ड थोमस, जे. सरजी अवनी (सं.), *ऑर्गेनाइजेशन एण्ड ह्यूमन बिहेवियर,* फोकस आन स्कूल्स, मैकग्रा–हिल बुक कम्पनी, न्यूयार्क पृ. 316–324

बुच, एम.बी. (1983) ''*थर्ड सर्वे इन एजुकेशन*'', राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली।

एण्ड्रीव डब्ल्यू. हॉलपीन, (1971) ''*थ्यौरी एण्ड रिसर्च इन एडमिनिस्ट्रेशन*'' द मैकमिलन कंपनी, कॉलियर मैकमिलन लिमिटेड लन्दन, पृ. 131–132

बेस्ट, जे.डब्ल्यू (1963) ''*रिसर्च इन एजुकेशन*'' प्रन्टिस हॉल ऑफ इण्डिया प्रा. लि., नई दिल्ली, पीपी–31–32

गैरिट, एच.ई. 1967, ''*स्टैटिस्टिक्स इन साइकोलॉजी एण्ड एजुकेशन*'' वाकील्स केफर एण्ड सीमेन्स प्रा. लि. बम्बई

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 14, अंक 3, दिसंबर 2007

शोध टिप्पणी / संवाद

पाश्चात्य तथा भारतीय मनोविज्ञान में व्यक्तित्व की संकल्पना

मयंक कुमार श्रीवास्तव*

मनोविज्ञान अर्थात साइकोलाजी शब्द का प्रयोग सत्रहवीं शताब्दी से प्रारंभ हो गया था तथा इसका मूल विषय साइकि (Psyche) सोल (Soul) अथवा आत्मा का उल्लेख दर्शन शास्त्र में लगभग छठी शताब्दी ईसा पूर्व में मिलता है। सच तो यह है कि मानव ने जब से चिन्तन प्रारंभ किया तब से ही उसका ध्यान, आत्मा और मन की ओर गया और मानव ने जब से मन, आत्मा, जीवात्मा, सुख, दुख, मोक्ष आदि के बारे में सोचना प्रारंभ किया तभी से मनोविज्ञान का उद्‌गम माना जाता है। मनोविज्ञान स्वतंत्र शाखा के रूप में 1879 से स्थापित माना जा सकता है, जब विलियम बुन्ट ने मनोविज्ञान की पहली प्रयोगशाला स्थापित की थी।

भारतीय मनोविज्ञान का मूल आधार भारतीय दर्शन है। महर्षि पंतजलि ने योग सूत्र की रचना ईसा से 200 वर्ष पूर्व की तथा उपनिषदों की रचना 700 ई.पू. से 600 ई.पू. के बीच मानी जाती है। इसी समय से मनोविज्ञान के अध्ययन की शुरूआत मानी जा सकती है। भारतीय दर्शन में व्यक्तित्व के नाम से सीधा उल्लेख नहीं मिलता है पर मानव व्यक्तित्व जिनसे भी प्रभावित होता है या उसके जो अवयव माने जाते हैं उनके बारे में विभिन्न नामों से विस्तृत चर्चा की गई है। सांख्य, न्याय, वेदान्त, योग, वैशेषिक, मीमांसा, जैन तथा बौद्ध दर्शन में मानव व्यक्तित्व की अवधारणात्मक संकल्पना तथा सिद्धांतों का उल्लेख मिलता है। भारतीय दर्शन (मनोविज्ञान) में प्रयुक्त शब्द जीवात्मा

*तदर्थ प्रवक्ता, शिक्षा, क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान, (एन.सी.ई.आर.टी.) श्यामला हिल्स, भोपाल (म.प्र.)

को व्यक्तित्व माना जा सकता है। यह सम्प्रत्यय मनोदैहिक संरचना से संबंधित न होकर उसके नैतिक एवं आध्यात्मिक पहलू से संबंधित माना जाता है। इसमें स्थूल शरीर तथा सूक्ष्म शरीर की संकल्पना की गई है। भौतिक शरीर को जो हमें दिखाई पड़ता है,स्थूल शरीर तथा जीवात्मा या आत्मा को सूक्ष्म शरीर माना जाता है। योग दर्शन में व्यक्तित्व के शारीरिक एवं मानसिक, दोनों पहलुओं को सम्मिलित किया गया है।

व्यक्तित्व सिंद्धात एवं संकल्पना की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

जब हम व्यक्तित्व की संकल्पना तथा सिंद्धात के ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को जानने का प्रयास करते हैं, तो पाते हैं कि पौराणिक ग्रीक विद्वानों जैसे हिपोक्रेट्स, प्लेटो तथा अरस्तू द्वारा मानव स्वभाव एवं व्यवहार के बारे में दिये गये विचारों में व्यक्तित्व की संकल्पना तथा सिंद्धात का प्रतिबिम्ब दृष्टिगोचर होता है। हिपोक्रेट्स ने 400 ईसा पूर्व में जो सिद्धांत बताया उसमें शरीर द्रवों के आधार पर व्यक्तित्व के चार आधार बतलाये गये हैं। लुंडिन (1985) ने अरस्तू को पहला मनोवैज्ञानिक कहा था। अरस्तु (384–322 ईसा पूर्व) ने आत्मा की व्याख्या में बतलाया कि आत्मा और शरीर में भेद नहीं है तथा आत्मा की क्रियाओं से शरीर का परिचय मिलता है।

आधुनिक व्यक्तित्व के जो सिंद्धात दिये गये हैं वे कई स्रोतों से प्रभावित प्रतीत होते हैं। शार्को, फ्रॉयड एवं उनके शिष्यों तथा न्यूफ्राडियन आदि ने व्यक्तित्व को नैदानिक दृष्टिकोण से देखने का प्रयास किया। गेस्टाल्ड परम्परावादियों ने मानव व्यवहार का अध्ययन एक इकाई के रूप में किया, जिसमें प्रमुख मनोवैज्ञानिक लेविन, केली, विनस बैनगर एवं बौस, अल्फ्रेड एडलर, मैसलो, रोजर्स आदि हैं। सीखने के सिंद्धात के परिप्रेक्ष्य में व्यक्तित्व के सिंद्धात की संकल्पना प्रस्तुत की गई तथा पर्यावरणीय कारकों के व्यक्तित्व पर पड़ने वाले प्रभाव संबंधी विचार प्रस्तुत किये गये हैं। इस प्रकार की अवधारणा पर ध्यान आकर्षित करने वाले प्रमुख मनोवैज्ञानिकों में स्कीनर, मिलर, डोलार्ड तथा बन्डुरा आदि हैं। मानव व्यवहार की व्याख्या एवं व्यक्तित्व के सिंद्धात पर प्रकाश डालने के लिए मनोगतिकी (Phychometry)का उपयोग करने वाले प्रमुख मनोवैज्ञानिकों में कैटल, आइजेन्क, मर्रे, आलपोर्ट तथा शेल्डन आदि प्रमुख हैं। उपर्युक्त विवरण पर ध्यान दें तो हम पाते हैं कि पाश्चात्य मनावैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व की संकल्पना सीमित अर्थों में कुछ विशेष दृष्टिकोणों के आधार पर दी है।

प्राचीन पाश्चात्य दर्शन में व्यक्तित्व की संकल्पना

पाश्चात्य दर्शन में मनोवैज्ञानिक व्याख्यात्मक दृष्टिकोण हिपोक्रेट्स के सिंद्धात में दृष्टिगोचर होता है। हिपोक्रेट्स (400 ईसा पूर्व) ने व्यक्तित्व के चार प्रकार बताये हैं। प्रत्येक व्यक्ति में चार द्रव पाये जाते हैं और जिस व्यक्ति में जिस द्रव की प्रधानता होती है उसका व्यक्तित्व वैसा ही बन जाता है। इन द्रव को पीलापित्त, कालापित्त, रक्त तथा कफ कहा गया। हिपोक्रेट्स ने पीले पित्त की प्रधानता वाले को गुस्सैल, काले पित्त वाले को विषादी तथा रक्त की प्रधानता वाले को आशावादी तथा कफ की प्रधानता वाले को विरक्त कहा।

हिपोक्रेट्स से पूर्व डिमोक्रिट्स (460–370 ईसा पूर्व) ने व्यक्तित्व को शरीर और आत्मा से जोड़कर देखा। उन्होंने कहा कि शरीर और आत्मा अर्थात मन में कोई अंतर नहीं होता क्योंकि दोनों का विनाश हो जाता है। प्लेटो ने आत्मा और शरीर में अंतर किया। उनका मानना था कि आत्मा का स्वरूप अभौतिक है, इसलिए उससे संबंधित तथ्य की जानकारी ज्ञानेंद्रियों के माध्यम से नहीं प्राप्त की जा सकती। अरस्तू ने मानव की अनुभूतियों तथा व्यवहारों के आधार पर शरीर एवं आत्मा के मध्य तर्क संगत संबंध होने की बात कही। उनका मानना था कि आत्मा या मन सम्पूर्ण प्राणी का एक रूप है इसलिए मन तो ज्ञात चीजों से अलग नहीं किया जा सकता है। मन वातावरण से प्रभावित होकर क्रियायें करता है। उनकी अवधारणा थी कि प्राणी तथा पर्यावरण एक ही तंत्र के दो पहलू है जो एक दूसरे के साथ पर्याप्त अन्त:क्रिया करते हैं।

व्यक्तित्व को जब शरीर और आत्मा से जोड़कर देखते हैं तो यह पाते हैं कि आत्मा ही शरीर को कार्य करने का निर्देश देती है। रेनेदेकार्ते (1596–1650) के मत के अनुसार आत्मा की अनुपस्थिति में शरीर एक मशीन के समान है। उनका मानना था कि प्रत्येक व्यक्ति में एक मन या आत्मा होती है जो शरीर की यांत्रिक क्रियाओं को निर्देशित करने या परिवर्तित करने का कार्य करती है। देकार्ते मानते हैं कि मन में दो तरह के विचार उत्पन्न होते हैं। पहला अर्जित विचार दूसरा जन्मजात विचार। आत्मन तथा ईश्वर से संबंधित विचार जन्मजात विचार है तथा इसके अतिरिक्त अन्य विचार अर्जित विचार हैं। देकार्ते ने माना कि मन एवं शरीर दो अलग–अलग तत्वों के रूप होते हैं तथा दोनों शरीर से संबंधित होते हैं और इन दोनों के मध्य अन्त:क्रिया होती है, यही अन्त:क्रिया व्यक्तित्व निर्माण के लिए उत्तरदायी होती है।

रेनेदेकार्ते के समय को पूर्व मनोवैज्ञानिक काल या आधुनिक दर्शन शास्त्रीय प्रभाव का काल माना जाता है इसलिए इसके बाद दिये गये विचारों में कुछ नयापन दिखाई

पड़ता है। थॉमस ब्राउन (1778–1820) के मत के अनुसार मन एवं आत्मा का स्वभाव एकात्मक होता है तथा कुछ नियम होते हैं जिसके अनुसार मन कार्य करता है। ब्राउन के समकालीन इमैन्यूल कान्ट (1724–1804)ने व्यक्तिनिष्ठता पर जोर दिया तथा सहजवाद की व्याख्या जन्मजात कारकों के आधार पर किया। उन्होंने कहा कि व्यक्ति में समय एवं स्थान के प्रत्यक्षण की प्रवृत्ति पूर्णत: अनुभव पर आधारित नहीं होती बल्कि यह प्रवृत्ति जन्मजात होती है। व्यक्ति जो कुछ प्रत्यक्षण करता है वही सीखता है और उसी के अनुसार उसका व्यक्तित्व बनता है, ऐसा कान्ट के सिंद्धात के आधार पर माना जा सकता है।

बुन्ट के सिंद्धात से मनोविज्ञान के काल का प्रारंभ माना जाता है। बुन्ट ने पहली मनोवैज्ञानिक प्रयोगशाला की स्थापना की और यहीं से हम मनोविज्ञान के स्वतंत्र अस्तित्वच को मानते हैं। परंतु सिंद्धातों में दार्शनिक प्रभाव दिखाई पड़ता है। बुन्ट ने माना कि मन और शरीर एक दूसरे के समान्तर होते हैं, लेकिन एक दूसरे के साथ अन्त:क्रिया नहीं करते हैं अर्थात् मन शरीर पर आधारित नहीं होता है। बुन्ट ने चेतन अनुभूति के परिमाणविक स्वरूप पर बल डाला तथा कहा कि चेतन अनुभूति दो मनोवैज्ञानिक तत्वों–संवेदन तथा भाव के रूप में होती है। संवेदना चेतना का वस्तुनिष्ठ तत्व तथा भाव चेतना का आत्मनिष्ठ तत्व के रूप में माने गये हैं। ज्ञानेन्द्रियों के क्रियाओं से व्यक्ति में संवेदना आती है और जब संवेदना एक जुट होकर मिल जाती हैं तो प्रतिमा बनती है। बुन्ट ने माना कि भाव किसी एक तत्व से उत्पन्न नहीं होता है। उन्होंने भाव की तीन विमायें बतलाई हैं– उत्तेजन–शांत, तनाव–शिथिलता तथा सुख–दुख। यही भाव व्यक्तित्व के निर्धारण के लिए उत्तरदायी माने जा सकते हैं। भाव के अनुसार ही व्यक्ति की कार्यशैली विकसित होती है या यह कहें कि भाव के अनुसार ही प्रतिक्रिया (Response)की जाती है । उसी के अनुसार किसी व्यक्ति का व्यक्तित्व परिलक्षित होता है।

आधुनिक पाश्चात्य मनोविज्ञान में व्यक्तित्व की संकल्पना

वर्तमान व्यक्तित्च शब्द का अंग्रेजी अनुवाद Personality है जो लैटिन भाषा के शब्द परसोना (Persona)से बना माना जाता है। ईसा के एक सदी पूर्व परसोना शब्द का उपयोग व्यक्ति के कार्यों को प्रगट करने के लिए किया जाता था। परसोना का अर्थ नकाब या मुखैटा है जिसे नाटक करते हुए पात्र द्वारा पहना जाता है। इस आधार पर बाहरी वेषभूषा को ही व्यक्तित्व माना जाता है। यह परिभाषा बहुत सीमित अर्थ को

व्यक्त करती है। आधुनिक मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व की परिभाषा या संकल्पना व्यापक परिप्रेक्ष्य में किया है। व्यक्तित्व में व्यक्ति के उन सभी शील, गुणों, प्रवृत्तियों या विशेषताओं को सम्मिलित माना जाता है जिससे व्यक्ति के व्यवहार में संगति आती है।

सिगमण्ड फ्रायड ने व्यक्तित्व के मनोविश्लेषण सिंद्धात में व्यक्तित्व की संरचना को गत्यात्मक माडल तथा अकारात्मक माडल के माध्यम से स्पष्ट किया है। अकारात्मक माडल में मन के ऐसे पहलू को बताया है जिसमें संघर्षमय परिस्थिति की गत्यात्मकता उत्पन्न होती है। फ्रायड ने इसे तीन स्तरों चेतन, अर्द्धचेतन तथा अचेतन में विभाजित किया है। चेतन से तात्पर्य मन के उस भाग से है जिसमें सभी अनुभूतियाँ एवं संवेदनायें होती हैं तथा जिनका संबंध वर्तमान से होता है। अर्द्धचेतन में वे इच्छायें, विचार या भाव आते हैं जो वर्तमान चेतन तथा अनुभव में नहीं होते किंतु थोड़े से प्रयास पर चेतन मन में आ जाते हैं।

इसे अवचेतन भी कहते हैं। अचेतन तीसरी अवस्था है, यह अनुभूति की गई परिस्थितियों, इच्छाओं, विचारों या भावों को वर्तमान में याद करने पर भी चेतन मन में नहीं आते हैं। इसे अचेतन इसलिए कहा गया क्योंकि यह चेतना से परे है। फ्रायड ने यह कहा है कि हमारे व्यवहार पर अचेतन अनुभूतियों का प्रभाव चेतन तथा अर्द्धचेतन अनुभूतियों से अधिक पड़ता है। गत्यात्मक माडल में फ्रायड ने बताया है कि मूल प्रवृत्तियों से उत्पन्न मानसिक संघर्षों का समाधान होता है। इसकी व्याख्या के लिए उन्होंने उपाहं, अहं तथा पराहं को साधन के तीन स्तर के रूपों का उपयोग किया। उपाहं को जीव का जैविक तत्व माना जिसमें उन प्रवृत्तियों की भरमार होती है जो जन्मजात होती हैं। मन के गत्यात्मक पहलू का दूसरा भाग अहं है। अहं मन का वह हिस्सा है जिसका संबंध वास्तविकता से होता है। पराहं मन का तीसरा भाग है, इसको व्यक्तित्व की नैतिक शाखा माना जाता है।

हेनरी मर्रे ने अपने परसोनोलॉजी के सिंद्धात में व्यक्तित्व को अमूर्ति या काल्पनिक माना है। व्यक्तित्व के अमूर्त परिकल्पना के बाद भी उन्होंने मानासिक व्यक्ति में संगठनात्मक एवं नियंत्रणात्मक कार्यों के लिए कुछ केन्द्रीय प्रतिक्रियाऐं होती हैं। इन प्रक्रियाओं का केन्द्र बिन्दु मस्तिष्क होता है। व्यक्तित्व में उन्होंने शारीरिक एवं मानसिक, दोनों अवयवों को सम्मिलित माना है। उनके अनुसार व्यक्तित्व की परिभाषा निम्नानुसार है:

अर्थात्''व्यक्तित्व शरीर का एक वरिष्ठ संस्थान या नियंत्रणात्मक अंग है जो

मस्तिष्क में उपस्थित होता है। यदि मस्तिष्क नहीं तो व्यक्तित्व नहीं।''

आलपोर्ट (1937) के अनुसार ''व्यक्तित्व के भीतर उन मनोशारीरिक तंत्रों का गतिशील या गत्यात्मक संगठन है जो वातावरण में उसके अपूर्व समायोजन का निर्धारण करता है।''

आलपोर्ट ने व्यक्तित्व के बाहरी तथा भीतरी, दोनों गुणों को शामिल किया है किंतु उन्होंने भीतरी गुणों को अधिक महत्वशील माना है। आलपोर्ट ने व्यक्तित्व के शील गुणों पर अत्याधिक बल दिया है इसलिए इसके सिंद्धात को व्यक्तित्व का शीलगुण सिंद्धात कहा गया।

कार्ल रोजर्स ने व्यक्तित्व का सांवृत्तिक सिंद्धात दिया जिसमें उन्होंने बताया कि व्यक्तित्व में आत्म प्रत्यय तथा अनुभूतियाँ सम्मिलित होती हैं। आत्म प्रत्यय तथा अनुभूतियों में संगतता होनी चाहिए, जब इनके बीच अंतर आता है तो व्यक्ति में चिंता उत्पन्न होती है। आत्म प्रत्यय तथा अनुभूति के मध्य होने वाले समन्वय से ही व्यक्ति का व्यक्तित्व परिलक्षित होता है।

एब्राहम मैसलो ने व्यक्तित्व का मानवतावादी सिंद्धात प्रतिपादित किया जिसमें उन्होंने व्यक्तिगत वृद्धि तथा आत्म निर्देशन की क्षमता पर अधिक बल डाला। उन्होंने बतलाया कि व्यक्ति की कुछ आवश्यकताएं होती हैं जिसके पूर्ण या अपूर्ण रह जाने से व्यक्ति का व्यक्तित्व प्रभावित होता है। यह कहा जा सकता है कि व्यक्तित्व के निर्माण में व्यक्ति की आवश्यकताओं की पूर्ति की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। मैसलो ने पांच आवश्यकताओं को चिन्हित किया है। वे हैं- शारीरिक आवश्यकता, सुरक्षा की आवश्यकता, स्नेह की आवश्यकता, सम्मान की आवश्यकता तथा आत्मसिद्धि की आवश्यकता।

विभिन्न आधुनिक मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व की संकल्पना तथा सिंद्धात दिये हैं। उनमें से कुछ प्रमुख सिंद्धातों का ही उल्लेख किया गया है। ये ऐसे सिंद्धात हैं जो मनोविज्ञान को नये आयाम तथा नई दिशा प्रदान करते हैं। संक्षिप्त में व्यक्ति के व्यक्तित्व के संबंध में यह कहा जा सकता है कि व्यक्ति क्या है, वह क्या सोचता है, क्या अनुभव करता है, वह सभी व्यक्तित्व में ही आता है। वास्तव में व्यक्तित्व मानवीय व्यवहारों का प्रतिमान है, जो किसी परिस्थिति विशेष के उत्तर में दिये जाते हैं।

भारतीय दर्शन में व्यक्तित्व की संकल्पना

भारतीय दर्शन में जीवन का परम लक्ष्य आध्यात्मिक अनुभूति रही है, जिसके फलस्वरूप आत्मा जीवन व मृत्यु के चक्र से मुक्त हो जाती है अर्थात् आत्मा परमात्मा में विलीन हो जाती है। भारतीय दर्शन मन की प्रक्रियाओं, शक्तियों व नियमों के समझने को आत्म तत्व की अनुभूति मानता है। यह दर्शन आत्म तत्व को पूर्ण, शुद्ध व पवित्र मानता है तथा मानव के देहजनित बंधन से मुक्त होने की कामना करता है। भारतीय दर्शन में मन को व्यक्तित्व का प्रमुख अंश माना गया है। इसमें मस्तिष्क तथा हृदय, दोनों को शामिल माना जाता है। यहाँ पर उपनिषद, सांख्य तथा योग दर्शन में व्यक्तित्व की संकल्पना को संक्षिप्त रूप से प्रस्तुत किया जा रहा है।

उपनिषद में व्यक्तित्व

उपनिषद के अनुसार व्यक्तित्व का केंद्र जीवात्मा होता है जिसके चारों ओर चेतना या पुरुष के विभिन्न आवरण होते हैं। जीवात्मा को पुरुष के चार आवरणों से घिरा हुआ माना जाता है। आत्मा(जीवात्मा) आवाज, स्पर्श, रंग, स्वाद, गंध आदि से परे होता है इसलिए ज्ञानेन्द्रियों द्वारा इसका प्रत्यक्षण नहीं किया जा सकता है। यह सुख, दुख, खुशी एवं गम आदि से भी मुक्त होता है। इसलिए इसका प्रत्यक्षण मानव के आंतरिक अंगों द्वारा भी नहीं किया जा सकता है, परंतु ऐसा नहीं है कि मानव द्वारा आत्मा की अनुभूति नहीं की जा सकती है। इसकी अनुभूति चिन्तन या मनन द्वारा की जा सकती है। इसी अनुभूति को आत्मानुभूति कहते हैं। आत्मानुभूति आत्म ज्ञान के माध्यम से प्राप्त होती है।

कठोपनिषद के अनुसार आत्मा सभी से छिपी हुई होती है, इसलिए प्रगट रूप से दिखाई नहीं पड़ती है, किंतु दिव्य दृष्टि तथा तीक्ष्ण बुद्धि द्वारा देखा, जाना और समझा जा सकता है। इसमें आत्मा को अनन्त अविनाशी माना गया है। इसमें आत्मा का लक्षण है''सत्य ज्ञान मन्नन्तं वृह्म'' अर्थात् आत्मा सत्य है उसका कोई अन्त नहीं है। वृहदारण्यक उपनिषद में कहा गया है कि ''असतो मा सद् गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय। मृत्योर्मा-मृतमगमय।''अर्थात आत्मा हमें असत्य से सत्य की ओर अंधकार से प्रकाश की ओर तथा मृत्यु से अमरत्व की ओर ले जाती है। उपनिषदों का मूल विषय ही आत्म ज्ञान है। आत्म ज्ञान होने पर ही अमरत्व की प्राप्ति होती है।

उपनिषद में मानव व्यक्तित्व की व्याख्या पंचकोष के रूप में, चेतन की अवस्था के आधार पर, शरीरत्रय के रूप में तथा मानव पिण्ड व ब्रह्माण्ड की अनुरूपता के रूप

में की गई है।

पंचकोषीय व्याख्या : त्रैतीय उपनिषद में मानव व्यक्तित्व की पंचकोषीय व्याख्या की गई है। ये पांच कोष–अन्नमय कोष, प्राणमय कोष, मनोमय कोष, विज्ञानमय कोष तथा आनन्दमय कोष हैं।

(1) **अन्नमय कोष :** यह जीवात्मा का बाह्य आवरण है, इसमें जीवन के भौतिक पक्ष की सम्प्राप्ति पर जोर डाला जाता है। इसमें दैहिक शरीर तथा ज्ञानेन्द्रिय, दोनों सम्मिलित होते हैं। इसमें पांच कर्मेन्द्रिय तथा पांच ज्ञानेन्द्रियाँ शामिल होती हैं। कर्मेन्द्रिय में संभाषण, हाथ, पैर, उत्सर्जन अंग तथा जनन अंग आते हैं तथा ज्ञानेन्द्रियों में आंख, कान, नाक, मुख, तथा त्वचा सम्मिलत होती हैं। प्रथम स्थिति में व्यक्ति का कार्य एवं व्यवहार ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियों पर ही निर्भर होता है।

(2) **प्राणमय कोष :** यह भौतिक स्व से उच्चतर प्राणमय स्व है। प्राण ही वह शक्ति है जिसके द्वारा व्यक्ति श्वांस लेता है। प्राणमय कोष में जीवन को बनाये रखने वाले पांच तत्व वायु , अग्नि, जल, पृथ्वी तथा आकाश होते हैं।

(3) **मनोमय कोष :** यह प्राणमय से ऊपर की अवस्था है। इसमें मन द्वारा इन्द्रिय प्रदत्त ज्ञान का विश्लेषण कर उसका वर्गीकरण तथा संचयन किया जाता है। इसमें मन प्रमुख अंग होता है, यह ज्ञानेन्द्रियों से प्राप्त अनुभूतियों का रिकार्ड रखने का कार्य करता है।

(4) **विज्ञानमय कोष :** मनोमय से एक स्तर ऊपर विज्ञानमय कोष होता है। यह बौद्धिक आवरण माना जाता है। इन्द्रियों तथा मन के माध्यम से सभी प्रकार के ज्ञान का पता नहीं लगाया जा सकता है। कुछ तथ्य ऐसे होते हैं जिनके लिए बुद्धि अर्थात् विज्ञानमय कोष की आवश्यकता होती है। उदाहरण के लिए सद्–असद्, प्रेयस–श्रेयस के बीच अंतर को समझने के लिए विज्ञानमय कोष ही उपयोगी होता है।

(5) **आन्नदमय कोष** सबसे उच्च अवस्था आन्नदमय कोष की होती है। यह जीवात्मा की आन्नदमय तथा सुखद स्थिति होती है। इस स्थिति में ज्ञाता, ज्ञेय तथा ज्ञान के सारे भेद मिट जाते हैं। यह आन्नद की अवस्था मानी जाती है।

आन्नद का वर्णन शब्दों में नहीं किया जा सकता क्योंकि वह अभिभूतजन्य है। यह इन्द्रिय, बुद्धि तथा मन से परे है। यह अवस्था व्यक्तित्व विकास की आदर्श अवस्था है। इस अवस्था में व्यक्ति का प्रकृति से समायोजन ही नहीं बल्कि अनुकूलन हो जाता है। यह अवस्था सुख-दुख तथा पाप-पुण्य से ऊपर की अवस्था है। आध्यात्मिक रूप से इसे परमानन्द की अवस्था माना जाता है। इसमें मन, बुद्धि तथा अंहकार, तीनों मानसिक तत्व समन्वय या सामन्जस्य पूर्वक कार्य करते हैं।

चेतन अवस्था की व्याख्या : उपनिषद विचारकों ने माना कि चेतन आत्मन में निहित होता है। उन्होंने चेतना की चार अवस्था बतलाई है। ये अवस्थाएं हैं- जागृतावस्था, स्वप्नावस्था, गहरी निद्रावस्था तथा तुरीयावस्था। **जागृतावस्था** में चेतना बाह्य वस्तुओं की पहचान, मन को इन्द्रियों द्वारा वाह्य उद्दीपकों के संबंध में दी गई सूचनाओं के आधार पर करता है। इस अवस्था में जीवात्मा वाह्य इन्द्रियों की मदद से सांसारिक विषयों का भोग करता है।

दूसरी अवस्था **स्वप्नावस्था** होती है। इस अवस्था में मन द्वारा प्रत्यक्ष संज्ञान लिया जाता है। मन जागृत अवस्था की प्राप्त सूचनाओं के आधार पर कार्य करता है। इस अवस्था में ज्ञानेन्द्रियाँ सक्रिय नहीं होती हैं। इस अवस्था में जीवात्मा आंतरिक वस्तुओं को सूक्ष्म रूप से जानती है तथा उसका भोग करती है।

तीसरी अवस्था गहरी **निद्रावस्था** है। इस अवस्था में पुरुष प्राणमय एवं मनोमय स्तरों से स्वतंत्र हो जाता है। यह इच्छामुक्त तथा दुविधामुक्त अवस्था मानी जाती है। इस अवस्था में व्यक्ति आत्मन शक्ति से प्रत्यक्षण करता है। यह जीवात्मा की शुद्ध अवस्था कहलाती है तथा व्यक्ति की परमानन्द अवस्था मानी जाती है।

अंतिम अवस्था **तुरीय** अवस्था होती है। इस अवस्था में व्यक्ति सीमाओं, इच्छाओं तथा प्रभावों से मुक्त हो जाता है। वास्तव में यह आत्मानुभूति की अवस्था होती है। इस अवस्था में जीवात्मा को आत्मा कहा जाता है। यह अवस्था व्यक्तित्व विकास की आदर्श अवस्था मानी जा सकती है।

निष्कर्षत: कहा जाता है कि मानवीय व्यक्तित्व का सार तत्व जीवात्मा है जो विभिन्न अवस्थाओं से होते हुए आत्मा की अवस्था में पहुंचती है, जो व्यक्तित्व विकास की अंतिम अवस्था मानी जा सकती है। इस अवस्था में आत्मा परमात्मा के समकक्ष

होती है और व्यक्ति को परमानन्द की अनुभूति होती है।

शरीरत्रय की व्याख्या : मानव का स्थूल शरीर यही है, जिसे हम इन्द्रियों के माध्यम से देखते हैं। यह स्थूल शरीर समस्त बुराईयों का मूल तथा कर्म शरीर है। इसे भोगायतन भी कहते हैं क्योंकि इसमें ही पूर्व जन्म के पाप-पुण्यों के फलों का भोग होता है। अत: इसको अनुपयोगी मानना उचित नहीं है। स्थूल शरीर दस इंद्रियों का समुदाय है। उपनिषद में शरीर निर्माण की प्रक्रिया का विवरण कुछ इस तरह मिलता है। षट्रस पदार्थों से रस, रस से रूधिर, रूधिर से मांस, मांस से मेद, मेद से स्नायु, स्नायु में अस्थि, अस्थि से मज्जा और मज्जा से शुक्र उत्पन्न होता है। ये सात धातुएं ही मानव शरीर की निर्मात्री हैं। पुरुष शुक्र और स्त्री रज के योग से गर्भ बनता है। ये सभी धातुएं हृदयस्थ रहती है। वहीं अन्तराग्नि उत्पन्न होती है।

अन्य उपनिषद के अनुसार स्थूल शरीर पंचीकृत महाभूतों का अंश लेकर उत्पन्न किया गया है। कपाल, चर्म, आंत, अस्थि, मांस और नख ये पृथ्वी के अंश हैं। रक्त, मूत्र, लार, पसीना आदि जल के अंश है। भूख, प्यास, ऊष्णता, मोह, मैथुन आदि अग्नि के अंश हैं। चलना, उठना, बैठना, सांस लेना आदि वायु के अंग हैं। आकाश के अंश काम, क्रोध आदि हैं।

मनुष्य के संबंध में यह धारणा प्रचलित है कि मनुष्य की मृत्यु के साथ ही उसका पूर्ण विनाश हो जाता है। यह अवधारणा इस तथ्य पर आधारित है कि व्यक्ति अपनी भौतिक इन्द्रियों के माध्यम से मृत्यु उपरांत नही देख पाता है। लेकिन भारतीय दर्शन यह नहीं मानता, वह मानता है कि जो नहीं दिखाई देता उसका भी अस्तित्व होता है। इसकी मान्यता यह है कि यदि हम अपने देखने की वृत्ति को अन्तर्मुखी कर दें और वाह्य दृश्य जगत के प्रत्यक्षण को स्थगित करके आभ्यान्तरिक अदृश्य जगत का प्रत्यक्षण करें तो यह अनुभव होगा कि स्थूल शरीर के अतिरिक्त कोई है जो सक्रिय रहता है। किंतु स्थूल शरीर उस समय क्रियाशील नहीं होता है। इसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि अस्तित्ववान और अनुभूत, दोनों तरह की वस्तुओं अर्थात स्थूल शरीर तथा सूक्ष्म शरीर, दोनों का अस्तित्व होता है।

शरीर के विषय में एक धारणा यह प्रचलित है कि पिता के शुक्र एवं माता के शोणित के संयोग से गर्भ की उत्पत्ति तभी हो सकती है जबकि वायु, जल, अग्नि और पृथ्वी तथा मानस, से निर्मित सूक्ष्म शरीर से युक्त आत्मा कर्मों द्वारा उससे संबंधित होती

है। उपनिषद में सूक्ष्म शरीर के अस्तित्व को स्वीकार किया गया है तथा यह माना गया है कि उसकी सत्ता तब तक रहती है, जब तक कि मोक्ष प्राप्त नही हो जाता है। यह सूक्ष्म शरीर दस इन्द्रियों, पांच तन्मात्राओं तथा बुद्धि, अंहकार तथा मन द्वारा निर्मित है। कहने का आशय है कि सूक्ष्म शरीर कर्मेन्द्रिय सहित पांच प्राणों का प्राणमय कोष ज्ञानेन्द्रियों सहित मन का मनोमय कोष और बुद्धि का मनोमय कोष मिलकर सूक्ष्म शरीर होता है। इस सूक्ष्म शरीर के साथ कई जन्मों के कर्माशय विद्यमान रहते हैं। जब तक मोक्ष प्राप्त नहीं होता तब तक सूक्ष्म शरीर स्थूल शरीर में बदलता रहता है। इसको इस तरह व्यक्त कर सकते हैं कि जब तक व्यक्ति की इच्छा पूर्ण नहीं होती है सूक्ष्म शरीर स्थूल शरीर को परिवर्तित करता रहता है, किंतु जब व्यक्ति की इच्छा समाप्त हो जाती है तो सूक्ष्म शरीर को स्थूल शरीर की आवश्यकता नही होती है अर्थात सूक्ष्म शरीर परमात्मा में विलीन हो जाता है, इसे ही मोक्ष कहा गया है। यह स्थूल शरीर नष्ट होने के समय धुन्ध के समान निकलता है। इसका भार लगभग आधा या तीन चौथाई औंस होता है। सूक्ष्म शरीर, स्थूल शरीर के अतिरिक्त तीसरे शरीर की कल्पना की गई है जिसे सूक्ष्मतम शरीर या कारण शरीर कहा गया है। याज्ञवल्क्य के मतानुसार कारण शरीर को भी अपने परम स्वरूप का ज्ञान नहीं होता क्योंकि कारण शरीर अज्ञानाच्छन्न होता है। उपनिषदों में स्थूल शरीर को जागृतावस्था, सूक्ष्म शरीर को स्वप्नावस्था तथा कारण शरीर को सुषुप्तावस्था से संबंधित माना गया है तथा अंतिम अवस्था तुरीयावस्था मानी जाती है।

मानव पिण्ड ब्रह्माण्ड अनुरूपता : इस परिकल्पना के अनुसार विश्व एक ब्रह्माण्ड तथा मानव पिण्ड उसी विशाल ब्रह्माण्ड का शूक्ष्म रूप है। पिण्ड की दृष्टि से जागृत अवस्था को विश्व, स्वप्न अवस्था को तेजस, सुषुप्त अवस्था को प्राज्ञ तथा तुरीयावस्था को आत्मा माना गया है। इन्हें ब्रह्माण्ड की दृष्टि से विराट या वैश्वानर, हिरण्यगर्भ या सूत्रात्मा, ईश्वर या ब्रह्मा माना गया है। वैश्वानर को सात अंगों वाला उन्नीस मुखों वाला तथा उन्नीस विषयों का भोक्ता माना गया है। वैश्वानर आत्मा के मस्तक को सुजेता, चक्षु को सूर्य, प्राण को वायु, देह को मध्य भाग आकाश, वास्ति को जल, पृथ्वी को दोनों चरण, वक्ष स्थल को वेदी, लोभ को दर्भ, हृदय को गर्हपात्याग्नि, अन्वाहार्य को पाचन तथा मुख को अवहनीय कहा जाता है। पांच ज्ञानेन्द्रियाँ, पंच प्राण, मन, बुद्धि अंहकार और चित्य ये वैश्वानर के उन्नीस मुख हैं जिनसे वह स्थूल विषयों का भोग करता है। जागृत अवस्था या वैश्वानर की अवस्था में आत्मा तथा मन का संसर्ग, मन व इंद्रियों का

संसर्ग, इन्द्रियों और विषयों का संसर्ग रहता है। दूसरी अवस्था स्वप्नावस्था है, जिसमें आत्मा व मन का संसर्ग तथा मन व इन्द्रियों का संसर्ग रहता है। इसे पिण्ड की दृष्टि से तेजस या ब्रह्माण्ड की दृष्टि से हिरण्यगर्भ कहते हैं। इसमें सूक्ष्म जगत से संबंधित सात लोक, उसके सात अंग तथा दस इन्द्रियाँ, पाँच प्राण, मन, बुद्धि चित्त व अहंकार सहित उन्नीस मुख हैं।

मानव चित्त की तृतीय अवस्था सुषुप्तावस्था है। इसे आत्मा का तृतीय पाद माना गया है तथा इसको पिण्ड की दृष्टि से प्राज्ञ तथा ब्रह्माण्ड की दृष्टि से ईश्वर बताया गया है। इस अवस्था में स्थूल तथा सूक्ष्म विषयों का अभाव हो जाता है। कहने का आशय यह है कि इस अवस्था में किसी विषय का बोध नहीं होता है। मानव विकास की चौथी अवस्था तुरीय अवस्था है। यह ब्रह्म का चतुर्थ पाद है। यह न तो अन्तः प्रज्ञ है, न वहिरप्रज्ञ है, न प्रज्ञ है और न अप्रज्ञ है वरन दृष्ट, अव्यवहार्य, अग्राह्य, अलक्षण, अचिन्त, अव्ययदेश्य, अकात्म प्रत्यय सार, प्रपंच का उपशम, शांत शिव और अद्वैत रूप है। यह दिक, काल, एकत्व, बहुत्व, द्वैत से परे अन्नता, पूर्णता, पूर्ण संतोष तथा अनिर्वचनीय है। इसमें आत्मा अपने विशुद्व रूप में रहती है। अहंकार तथा अस्मिता की अवस्था से निकल कर अद्वैत रूप तथा सर्वान्तर आत्मा का ज्ञान प्राप्त कर लेता है। इस अवस्था को व्यक्ति के व्यक्तित्व की आदर्श अवस्था कह सकते हैं। इस स्थिति को पिण्ड की दृष्टि से आत्मा तथा ब्रह्माण्ड की दृष्टि से ब्रह्म कहा जाता है। इस अवधारणा के अनुसार अग्नि, वायु, जल आदि जो ब्रह्माण्ड में है वे सब मानव पिण्ड में भी विद्यमान हैं।

योग सिंद्धात में व्यक्तित्व : योग शब्द का सामान्य अर्थ है मिलन अर्थात जीवात्मा का परमात्मा से मिलन। योग दर्शन में योग का अर्थ है ''योगाश्चित वृत्ति निरोध''अर्थात चित्त वृत्तियों का निरोध। चित्त का अर्थ है अन्तःकरण। चित्त जब वाह्य वस्तुओं के सम्पर्क में आता है तो वह वस्तु का आकार ग्रहण कर लेता है, इस आकार को ही वृत्ति कहते हैं। योग में व्यक्ति अपनी सक्रियता के आधार पर मानसिक नियंत्रण प्राप्त कर सकता है। योग में ईश्वर को सबसे बड़ा आत्मन माना गया है, जो अन्य आत्मन से भिन्न है। योग दर्शन में आत्मा चित्त से भिन्न मानी गई है तथा चित्त को वृत्तियों से युक्त माना गया है। योग के आठ अंग हैं जो व्यक्ति के व्यक्तित्व को नया आयाम देने का कार्य करते हैं। ये आठ अंग–यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि हैं।

योगाभ्यास के कारण व्यक्ति को आठ प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। ये सिद्धियाँ हैं अणिमा या सूक्ष्म स्वरूप होना, लाधिमा या हल्का होना, महिमा या बड़ा अथवा भारी होना, प्राप्ति या हरेक चीज उपलब्ध करना, प्रकाम्य या ईच्छा शक्ति का अवाधित होना, अधिकार जमाना या सम्पूर्ण संकल्पों की प्राप्ति। ये सिद्धियाँ भी मानव व्यक्तित्व को प्रभावित करती हैं जिसको जो सिद्धि अधिक मात्रा में प्राप्त हो जाती है उसी के अनुरूप उसका व्यक्तित्व बन जाता है।

सांख्य सिंद्धात में व्यक्तित्व : सांख्य सिद्धांत में मानव व्यक्तित्व को पुरुष तथा प्रकृति की अन्त:क्रिया का परिणाम माना गया है जबकि जीव अर्थात अनुभाविक आत्मन को इन दोनों के मिलन से बना हुआ माना गया है। दैहिक पुरुष तथा मानसिक सम्प्रत्यय को प्रकृति कहा गया है। सांख्य के अनुसार पुरुष के बिना प्राणी जीवनहीन होता है, प्रकृति को जड़ तथा पुरुष को चेतन कहा गया है। सांख्य के अनुसार सम्पूर्ण मनोदैहिक संरचना में बाह्य शरीर तथा शूक्ष्म शरीर, दोनों शामिल होते हैं। शूक्ष्म शरीर मानसिक अंगों का वाहक होता है जो व्यक्ति के आंतरिक जीवन को निर्धारित करता है। सांख्य के अनुसार बाह्य अंग आंतरिक अंगों के प्रमुख साधन होते हैं। बाह्य अंगों द्वारा सभी तरह के उद्दीपकों के बारे में ज्ञान प्राप्त होता है लेकिन किस उद्दीपक की आवश्यकता है इसका निर्धारण आंतरिक अंग ही करते हैं। इस तरह आंतरिक अंग तथा बाह्य अंग एक दूसरे से मिलकर कार्य करते हैं।

सांख्य में व्यक्तित्व के तेरह अंग बताये गये हैं जिनमें से दस बाह्य अंग तथा तीन आंतरिक अंग हैं। दस बाह्य अंगों में पांच प्रत्यक्षण के हैं जिन्हें ज्ञानेन्द्रिय कहा जाता है तथा पांच कार्य करने के अंग हैं जिन्हें कर्मेन्द्रिय कहा जाता है। व्यक्ति के तीन आंतरिक अंग मन, अहंकार तथा बुद्धि हैं। सांख्य के अनुसार जीवात्मा में स्थूल तथा सूक्ष्म, दोनों वस्तुयें होती हैं। स्थूल शरीर को व्यक्ति अपने माता-पिता से प्राप्त करता है तथा यह मृत्यु के बाद समाप्त हो जाता है। सांख्य दर्शन में गुण को प्रकृति का तत्व या द्रव्य माना गया है। इस दर्शन में तीन तरह के गुणों का उल्लेख किया गया है जिससे व्यक्ति की चित्तप्रकृति(Temperament)का निर्धारण होता है। ये हैं सत्व, तमस्, एवं रजस। जिस व्यक्ति में जिस गुण की अधिकता होती है, उसका व्यक्तित्व उसी के अनुरूप बन जाता है। जिस व्यक्ति में सत्व गुण अधिक होता है। उसे संवेगों पर नियंत्रण हो जाता है। वह किसी तरह की लालसा या लालच से मुक्त हो जाता है। वह स्वभाव से शांत तथा मृदु होता है। दूसरा गुण है तमस्। यह अहंकार का प्रतीक है। जिन व्यक्तियों में तमस् की

प्रधानता होती है, उसमें संभ्रान्ति, व्यामोह तथा ध्यान में विचलन अधिक होता है। रजस गुण से प्रभावित व्यक्ति अपनी इच्छाओं के प्रति लिप्तता अधिक दिखाता है। उसका संवेगात्मक नियंत्रण बहुत कम होता है और वह लालची हो जाता है।

संदर्भ

ओड, लक्ष्मीर के. (1973) शिक्षा की दर्शनिक पृष्ठभूमि, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अदाकमी जयपुर

वैदिक वेदांती (1997) उपनिषदों के ऋषि, अनुराग प्रकाशन, नई दिल्ली

व्यास, रामनारायण, धर्मदर्शन, मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, भोपाल

ब्रोउडी एस. हर्री (1965) बिल्डिंग ए फिजलासफी ऑफ एजुकेशन प्रेन्टिस हाल ऑफ इंडिया प्रा.लि., नई दिल्ली

दामोदरन के. (1979) भारतीय चिन्तन परम्परा, पीपुल्स पब्लिकसिंग हाउस प्रा.लि., नई दिल्ली।

दयाकृष्ण (2000) भारतीय दर्शन, रावत पब्लिकेशन जयपुर एवं दिल्ली

गुप्ता एस.एन. दास (1900)भारतीय दर्शन का इतिहास भाग1, राजस्थान प्रिंटिग वर्क्स, जयपुर

गोस्वामी आयुष्मान (2005) 'योग व ध्यान द्वारा अनुभूति' (शैक्षिक आवश्यकता, ज्ञानानन्द प्रकाश श्रीवास्तव द्वारा लिखित पुस्तक पर आधारित), भारतीय आधुनिक शिक्षा, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण संस्थान, नई दिल्ली, वर्ष 23 अंक 3 पृ. 21–27

पाठक, आर.पी.(2006) पंतजलि योग दर्शन में शिक्षा का स्वरूप, परिप्रेक्ष्य, राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, वर्ष 13 अंक 3 पृ. 134–143

रस्तोगी, गोपाल कृष्ण(2004) जीवन दर्शन तथा शिक्षा मनोविज्ञान के कुछ प्रश्न, भारतीय आधुनिक शिक्षा, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षक परिषद नई दिल्ली वर्ष 23 अंक2 पृ. 53–55

सिंह, अरुण कुमार एवं सिंह आशीष कुमार (2002) मनोविज्ञान के सम्प्रदाय एवं इतिहास, मोतीलाल बनारसी दास, नई दिल्ली

सिंह, वीरेन्द्र पाल (1994),उपनिषद दर्शन, पंकज पब्लिकेशन, दिल्ली

श्रीवास्तव, जी.एन.पी. (1988)रिसेन्ट एप्रोच टू पर्सनालिटी स्टडी, आगरा रिसर्च सेल, आगरा

तोमर, जगतपाल सिंह (2006) योग दर्शन की शैक्षिक संभावनाएं, भारतीय शिक्षा शोध पत्रिका, भारतीय शिक्षा शोध संस्थान, लखनऊ, वर्ष 25, अंक 2, पृ. 49–52

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 14, अंक 3, दिसंबर 2007

शोध टिप्पणी / संवाद

अध्यापक सशक्तिकरण में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी की भूमिका

राकेश भूषण गोदियाल* और सुनीता गोदियाल**

मानव विकास का जितना पुराना संबंध सभ्यता एवं संस्कृति से है उतना ही सूचनाओं के आदान-प्रदान एवं उनके संग्रहण से भी है। इसीलिए प्राचीन काल से ही सूचनाओं के आदान-प्रदान के लिए नवीन तरीकों को खोजने के कार्य में मानव शोधरत् रहा है, जिससे सुव्यवस्थित एवं अधिकारिक सूचनाओं को तुरन्त प्राप्त किया जा सके। इन्हीं मानवीय जिज्ञासाओं तथा प्रयत्नों के फलस्वरूप वर्तमान समय में सम्पूर्ण विश्व सूचना तकनीक एवं संचार तकनीक के युग से गुजर रहा है, और सूचना प्रौद्योगिकी वह विज्ञान है जो सूचनाओं के निर्माण, संग्रहण प्रक्रिया तथा प्रदान करने इत्यादि कार्य की प्रक्रिया को अधिक संभव बनाता है। सूचना तथा संचार तकनीकी ने ही विश्व में बढ़ती दूरियों को कम करने तथा उसे एक वैश्विक स्वरूप प्रदान करने का कार्य किया है।

वर्तमान समय में 21वीं सदी में शिक्षा व्यवस्था भी इससे अछूती नहीं रही है। फलस्वरूप सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी ने शिक्षा के विभिन्न पक्षों जैसे, शिक्षा के उद्देश्य, व्यवस्था, प्रबंधन, शिक्षण तकनीक, नियोजन सहायक सामग्री तथा विधियों को अधिक वैज्ञानिक एवं उन्नतिशील बनाकर शिक्षा को रुचिपूर्ण एवं रोजगारोन्मुख भी बनाया गया है, किन्तु इन सभी लक्ष्यों की प्राप्ति में निसन्देह शिक्षक की भूमिका का महत्व अधिक बढ़ गया है, क्योंकि यह सार्वभौमिक सत्य है कि किसी भी समाज के निमार्ण में उसके विकास एवं प्रगति के उच्चतम लक्ष्यों को प्राप्त करने में शिक्षक की

* प्रवक्ता, भूगोल विभाग, हे.न.ब. गढ़वाल विश्वविद्यालय, स्वा. रामतीर्थ परिसर, बादशाहीथैल, टिहरी गढ़वाल।

** उपाचार्य, शिक्षा विभाग, हे.न.ब. गढ़वाल विश्वविद्यालय, स्वा. रामतीर्थ परिसर, बादशाहीथैल, टिहरी गढ़वाल।

केन्द्रीय भूमिका रहती है। वे परिवर्तन के महत्वपूर्ण साधन होते हैं। जार्ज थेमलिन्स ने शिक्षा के महत्व को इन शब्दों में बताया है–

''आप मंत्रालयों के बगैर काम कर सकते हैं, लोक सेवकों के बगैर राजकाज चला सकते हैं। परंतु अगर अध्यापक नहीं होंगे तो यह दुनिया मात्र आगामी दो पीढ़ियों में ही पुनः आदिम अवस्था में पहुंच जाएगी।''

शिक्षित समाज में शिक्षक एक पथ प्रदर्शक की भूमिका में सदैव रहता है और शिक्षकों को तैयार करने वाले पाठ्यक्रम को अध्यापक शिक्षा के नाम से जाना जाता है। अतः अध्यापक शिक्षा वह प्रक्रिया है जो किसी भी साधारण व्यक्ति को एक कुशल तथा समर्पित शैक्षिक पेशेवर के रूप में तैयार करता है । अतः अध्यापक शिक्षा अनेक विशिष्टताओं से परिपूर्ण होनी चाहिए।

अपने देश के संदर्भ में यदि हम देखें तो पायेंगे कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात भारत में शिक्षा का विकास तीव्रगति से हुआ है, परिणामस्वरूप शिक्षा के अनेक क्षेत्रों में प्रशिक्षित अध्यापकों की आवश्यकता भी बढ़ती चली गयी है। अध्यापक प्रशिक्षण के माध्यम से शिक्षक कुछ निर्धारित कौशल के साथ वृहद स्तर पर प्रतिस्पर्धा हेतु तैयार किये जाते हैं। किसी भी अध्यापक को निम्न तीन गुणों का होना आवश्यक है – (1) सामान्य जागरूकता, (2) पाठ्यवस्तु का गहन ज्ञान तथा (3) निर्धारित कौशलों के मध्य अच्छी तारतम्यता। अध्यापक शिक्षा शिक्षकों में उनके कर्तव्यों का अधिकारों के विषय में व्यावसायिक दृष्टिकोण भी विकसित करती है।

वर्तमान में हमारे देश की परिस्थितियों में अनेक परिवर्तन द्रुतगति से हो रहे हैं, परन्तु अध्यापक शिक्षा से सम्बन्धित कार्यक्रमों में वर्तमान परिस्थितियों के सापेक्ष कम ही परिवर्तन दिखायी पड़ते हैं। आधुनिक समय में भी वर्षों पुरानी विधियों एवं पाठ्यक्रमों को ही अध्यापक शिक्षा में शामिल किया गया है, जबकि आज की परिस्थितियों एवं आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए अध्यापक शिक्षा में संज्ञानात्मक, भावात्मक तथा कौशल संबंधित उद्देश्यों के विशिष्टीकरण को महत्व दिया जाना आवश्यक हो गया है।

अध्यापक शिक्षा के सन्दर्भ में इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता है कि अध्यापकों की योग्यता अथवा स्तर अध्यापक शिक्षा के अन्तर्गत भाग लेने वाले प्रशिक्षणरत् अध्यापकों के स्तर पर आधारित होती है। नई शिक्षा नीति (1986) के अनुसार – अध्यापक शिक्षा एक सतत् चलने वाला कार्यक्रम है और इसमें सेवा से पूर्व

तथा सेवारत रहकर प्रशिक्षण प्राप्त करने वाला प्रत्यय प्रभावित करती है, और इसमें सेवा पूर्व व्यवसायिक प्रशिक्षण शेष अनुभव तथा सतत् शिक्षा एक ऐसी परिस्थिति का निर्माण करती है जो अध्यापक को एक सशक्त प्रशिक्षार्थी बनाती है। मैक्रॉ (1988) ने अध्यापक सशक्तिकरण की व्याख्या करते हुए लिखा है कि – अध्यापक सशक्तिकरण व्यवसायीकरण का पर्यायवाची है, जो कि शिक्षण तथा अधिगम के सुधार के लिए आवश्यक है और यह अध्यापक के स्तर तथा उसके ज्ञान को सशक्त करने में सहायता प्रदान करता है। सशक्त ज्ञान रखने वाला अध्यापक अधिक आत्मविश्वास, उत्साह एवं अधिकारों के साथ अपने कर्तव्यों का निर्वहन कर सकता है।

थॉमस एण्ड लेड (1996) अध्यापक सशक्तिकरण के तीन महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर प्रकाश डालते हैं, यथा – (1) आत्मविश्वास, (2) निर्देशन अभ्यास में परिवर्तन, (3) विद्यालय में नेतृत्व क्षमता। अध्यापक सशक्तिकरण मुख्यत: अध्यापक के व्यवसायगत ज्ञान, कौशल तथा व्यवहार के क्रम में सुधार करता है, जिससे कि वे शिक्षार्थियों को प्रभावशाली तरीके से शिक्षित कर सकते हैं, वे समाज को अच्छा नेतृत्व प्रदान कर सकते हैं तथा अधिक उच्च स्तर के साथ वे समाज में भी अपने स्तर को बनाये रख सकते हैं। अध्यापक सशक्तिकरण विद्वानों को और अधिक अध्यापकों के अधिकारों से संबंधित नीतियों पर विचार प्रकट करने हेतु विवश कर सकता है क्योंकि अध्यापक सशक्तिकरण से संबंधित इन नीतियों में, शिक्षकों के स्तर को ऊंचा उठाना, उन्हें अधिक स्वतंत्रता प्रदान करना, उनकी कार्य परिस्थितियों में सुधार लाना और उनकी व्यवसायिक उन्नति हेतु सतत् शिक्षण प्रशिक्षण के अवसरों को प्रदान करना इत्यादि शामिल किया जा सकता है।

यहां पर यह प्रश्न उठता है कि अध्यापकों को अधिक सशक्त कैसे किया जा सकता है? वर्तमान प्रौद्योगिकी संस्कृति की परिस्थितियों में सूचना तकनीक के ग्लोबल प्रभाव से शिक्षण एवं अधिगम प्रक्रिया भी प्रभावित हुयी है। अत: अध्यापक सशक्तिकरण में सूचना प्रौद्योगिकी का उपयोग भी किया जाना निहायत आवश्यक हो जाता है।

सूचना तकनीक के द्वारा अध्यापक सशक्तिकरण के विभिन्न आयामों (Aspects) के विषय में अधिक ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं और यह सम्भव हो सकता है आधुनिक माध्यमों यथा–सैटेलाइट, रेडियो, टेलीविजन , ऑडियो–विडियो कैसेट, कंप्यूटर्स, फ्लापी डिस्क, काम्पेक्ट डिस्क इत्यादि के उपयोग से। अध्यापक सशक्तिकरण पर

अधिक जानकारी अध्यापकों को अच्छे सामाजिक संबंधों के विकास तथा विद्यालयों में अच्छी सामाजिक व्यवस्था करने में सहायक सिद्ध हो सकता है।

जब हम सूचना को सूचनाओं के माध्यमों से प्राप्त करते हैं तो यह एक तरफा प्रक्रिया होती है परन्तु जब सूचना एक ओर से जाती है तथा दूसरी ओर से वापस आती है तो इस सूचना माध्यम को संचार तकनीक कहते हैं। इस प्रकार संचार तकनीक में मुख्यत: ऑडियो टेप, वीडियो टेप, टेलीफोन, इंटरनेट, ई-मेल, सेटेलाईट, कम्यूनिकेशन, वेब सिस्टम, शिक्षण मशीन तथा अभिक्रमित अधिगम आधारित पुस्तकें आदि को शामिल किया जा सकता है। संचार तकनीक वास्तव में सूचना तकनीक का ही रूप है। अत: इसे सूचना तथा संचार तकनीक कहना अधिक उचित होगा।

अध्यापक शिक्षा में सूचना तथा संचार तकनीक का प्रयोग सामान्यत: अध्यापक तथा अध्यापक समुदाय के मध्य ज्ञान के आदान-प्रदान, अधिगम तथा शिक्षा से संबंधित नवीन जानकारियों के लिए किया जा सकता है व इसके अधिकतम लाभ भी अध्यापकों द्वारा प्राप्त किये जा सकते हैं। इनमें से कुछ का प्रयोग अध्यापक सशक्तिकरण हेतु निम्नवत भी किया जा सकता है।

यू.जी.सी., एन.सी.ई.आर.टी. तथा एन.सी.टी.ई. ऐसे विडियों टेप तथा माइक्रो फिल्म अध्यापक प्रशिक्षण हेतु उपलब्ध करवाये जो अध्यापकों में अच्छे समायोजन, अवबोध प्रतिस्पर्धा तथा अपने व्यवसाय के प्रति व्यवसायगत प्रतिवद्धता बढ़ाने में सहायक हैं।

ऐसे टेप व माइक्रो फिल्में उपलब्ध करवायी जाय जो कक्षा स्थिति को प्रदर्शित करती हो, जैसे-कक्षा प्रबन्धन, उसमें अध्यापक की स्थिति, छात्रों द्वारा शिक्षण कौशल को स्वीकार करना तथा उसमें रुचि लेना, सहायक सामग्री का उपयोग, छात्रों व अध्यापकों के परस्पर संबंध तथा अध्यापकों एवं प्रधानाध्यापकों के मध्य परस्पर संबंधों का सचित्र वर्णन। इस प्रकार का निरीक्षण एवं निर्देशन अध्यापकों को स्व-मूल्यांकन हेतु प्रेरित कर सकेगा तथा उन्हें अपने व्यवहार एवं कक्षागत व्यवहार में परिवर्तन व सुधार करने हेतु प्रेरित कर सकेगा, जिससे कि वे सशक्तिकरण हेतु अपने प्रयासों में और अधिक सुधार कर सकते हैं। दूसरे शब्दों में अध्यापकों के अधिक सशक्तिकरण हेतु अध्यापक शिक्षा के पाठ्यक्रम में सूचना तथा संचार प्रौद्योगिकी के व्यवहारिक ज्ञान तथा साधनों का भी समावेश किया जाना चाहिए क्योंकि शिक्षक

सशक्तिकरण हेतु शिक्षक शिक्षा के पाठ्यक्रम में नवीन आयाम विकसित करना अत्यन्त आवश्यक है। अध्यापक अपनी अध्यापन प्रभावशीलता में वृद्धि करने हेतु संचार तकनीक का व्यवहारिक प्रयोग निम्न प्रकार से भी कर सकते हैं:

सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी का प्रयोग	शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में कम्प्यूटर्स का प्रयोग करना।
	विभिन्न विषयों एवं उपविषयों के महत्व को ध्यान में रखते हुए सी.डी., विडियो, एनीमेशन तथा ग्राफिक्स का प्रयोग करना।
	छात्रों की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए पाठ्यक्रम का निर्माण करना, उसमें तकनीक के उपयोग को महत्व देना।
	विभिन्न प्रकार के विद्यालयों तथा संस्थाओं के मध्य कम्प्यूटर्स नेटवर्किंग के माध्यम से सम्पर्क बनाना तथा उसका उपयोग अपने अध्यापन में करना।
	अपने विषय से संबंधित नयी से नयी जानकारी, आंकड़ें तथा तथ्यों का संकलन इन्टरनेट द्वारा करना तथा उनका उपयोग अपने अध्यापन में करना।
	प्रभावशाली अध्यापन हेतु पाठ्यवस्तु को पावरपावईन्ट तथा मल्टीमीडिया के द्वारा कक्षा में प्रस्तुत करना।
	विभिन्न विषयों के अध्यापन हेतु वेब पेज तथा विभिन्न पोर्टलों का निर्माण एवं उपयोग करना। शिक्षा तथा शिक्षण क्षेत्र में होने वाले नये प्रयोंगों तथा जानकारियों को प्राप्त करने हेतु विभिन्न देशों में रहने वाले अपने समकक्षों से टेलीकान्फ्रेसिंग के जरिए सम्पर्क स्थापित करते रहना।
	अध्यापकों के द्वारा अपने अध्यापन विषयों से संबंधित ई -होम पेज व ई-बुक्स का निर्माण करना व समय पर उन्हें नवीनीकृत करते रहना ताकि संबंधित जानकारी से अन्य लोग भी लाभान्वित हो सकें।

इस प्रकार निसंदेह सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी अध्यापक सशक्तिकरण में एक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन कर सकती है जिससे कि सशक्त अध्यापक उस शैक्षिक प्रणाली तथा सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रणाली से अधिक समीपता का अनुभव कर सके जिसमें रहकर उनकों कार्य करने होते हैं। ऐसे में वे सामाजिक न्याय तथा व्यावसायिक जीवन में समानता को भी अधिक सुगमता से स्वीकार कर सकते हैं। अत: कहा जा सकता है कि अध्यापक सशक्तिकरण हेतु वर्तमान समय में सूचना तथा संचार प्रौद्योगिक जितना अधिक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन कर सकती है उतना किसी अन्य औपचारिक साधनों द्वारा संभव नहीं हो सकता है।

परन्तु सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी का उपयोग मुख्यत: विद्यालयों तथा शिक्षण संस्थानों में कम्प्यूटर्स की उपलब्धता व कम्प्यूटर्स को जानने वाले अध्यापकों की उपलब्धता पर ही निर्भर करेगी। इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि हम पहले विद्यालयों तथा शिक्षण संस्थाओं में इनकी उपलब्धता सुनिश्चित करने का प्रयास करें जिसमें कि सरकार, प्रबन्धनतंत्र तथा अन्य संगठनों की सहायता की आवश्यकता होगी। यदि विद्यालयों एवं शिक्षण संस्थाआं में कम्प्यूटर्स, टेलिफोन, फैक्स, इन्टरनेट, टेलीविजन, वीडियो, इन्टरनेट जैसे मूलभूत प्रौ़द्योगिकी हम उपलब्ध करवा पाते तो इससे नि:सदेह अध्यापकों के शिक्षण कौशल एवं उनकी प्रभावशीलता में वृद्धि हो जायेगी।

संदर्भ

देशपाण्डे, सी.बी. (1995) कम्यूनिकेशन टैक्नोलॉजी इन एज्यूकेशन, साइको-लिंगुआ (रायपुर) वाल्यूम 25 (182) 111-114-1995।

मैक्रॉफ (1988), थॉमस और लैड. (1996) उद्धत द्वारा प्रमाली पाण्डे (एन.सी.इ.आर.टी.) टीचर इम्पावरमेंट इन्सेटस (इनसर्विस ट्रेनिंग) रिसर्च ट्रेन्डस एवं फ्यूचर प्रासिपेक्टिव''कवेस्ट इन एजूकेशन (मुम्बई) वाल्यूचर 23 (1) 8-18, जनवरी 1999।

मोहनासुन्दरम्, के. (2000) कम्यूनिकेशन इन्टरेक्शन दून टिचर्स एजूकेशन प्रोग्राम इन द ईयर 2000 प्राची वर्नल ऑफ सार्रको- कल्चरल, डायमेन्शन्स, वाल्यूम 16 (1) 51-51 अप्रैल 2000।

शर्मा म., (2000) इन्फार्मेशन टेक्नोलॉजी एण्ड हायर एज्यूकेशन, साइको लिंगुवा रायपुर वाल्यूम 30 (2) 121-124 जुलाई 2000।

टेमलिंन्शन (जी) उधृत डॉ. दीप्ती सान्याल एवं सचियता वासु, (2001) प्रोसपेक्टस आफ टीचर एज्यूकेशन इन मिलेनियम, आल इण्डिया एशोसियेसन फार एज्यूकेशनल रिसर्च XIV वार्षिक अधिवेशन में प्रस्तुत पेपर।

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 14, अंक 3, दिसंबर 2007

चिंतक और चिंतन

प्राथमिक शिक्षा के विशेष संदर्भ में गिजु भाई के शैक्षिक विचारों की प्रासंगिकता

निर्मला गुप्ता*

प्रस्तावना

शिक्षा मानव में सद् एवं असद् का विवेक उत्पन्न करती है। शिक्षा हमारे कर्म-कौशल की प्राप्ति का साधन है। वह हममें सहिष्णुता तथा जगत को कुछ देने की सामर्थ्य उत्पन्न करती है। शिक्षा हमें इस योग्य बनाती है कि हम अपने वैयक्तिक एवं सामाजिक उत्तरदायित्वों का सफलतापूर्वक निष्पादन करें। शांति और युद्ध, दोनों ही स्थितियों में अपने कर्त्तव्याकर्त्तव्य से भली -भांति अवगत बने रहें।

परंतु वर्तमान शिक्षा के स्वरूप को देखकर तो यही लगता है कि हम शिक्षा के वास्तविक उद्देश्य से कोसों दूर चले गये हैं। एपिक्टेट्स ने कहा है कि - ''राष्ट्र की सर्वोच्च सेवा यह है कि ऊँचे-ऊँचे भवनों का निर्माण करने के बजाय नागरिकों के चरित्र का उच्चीकरण किया जाय। दासता के बंधनों में जकड़े नागरिक ऊँची-ऊँची अट्टालिकाओं में वास करें उससे अच्छा है कि उच्च आदर्शों से अनुप्राणित निर्धन नागरिक घास-फूस की बनी झोपड़ियों में रह लें।''

आजकल जैसी शिक्षा शिक्षकों से दिलवायी जा रही है वह शिक्षा कम तथा निर्देशन अधिक है। यह निर्देशन बच्चों के बौद्धिक स्तर में वृद्धि करने में बुरी तरह असफल रहा है। हाँ, इसने बच्चों के मस्तिष्क में, उनकी स्मृति मंजूषा में ठूंस-ठूंस कर ऑकड़ें और सूत्र भरने के हास्यास्पद प्रयास अवश्य किये हैं जिसके कारण बच्चों का शिक्षा से

*शोध छात्रा, शिक्षा संकाय, सतीश चंद कालेज, बलिया-277402, उ.प्र.

विमुखीकरण हो रहा है। निर्देशन को सम्पूर्ण शिक्षण प्रक्रिया का एक आवश्यक अंग तो माना जा सकता है लेकिन उसे शिक्षा की प्राणवायु नहीं कहा जा सकता। बच्चों के लिए हितकर शिक्षा व्यवस्था वह है जिसमें शिक्षक धैर्यपूर्वक बच्चों की समस्याओं को सुनकर धैर्य और कोमलतापूर्वक उनका उत्तर दे। बच्चों के स्तर के अनुरूप प्रश्न पूछे और पुनः उनका समाधान प्रस्तुत करे। तभी शिक्षा एक सशक्त माध्यम के रूप में उभरेगी और समाज में व्याप्त विसंगतियाँ समाप्त होंगी।

वर्तमान भौतिक युग में शिक्षा, छात्र, शिक्षक एवं अभिभावक सभी का रूप एवं कर्त्तव्य बदल गया है। शिक्षा में नित्य नये नवाचारों ने चुनौतियाँ दी हैं। अतः इन चुनौतियों को स्वीकार करते हुए शिक्षक को ऐसी भूमिका अदा करनी है जिससे कि बालक स्वयं ही विद्यालय की ओर खींचा चला आये :

'गुरु नहीं तुम मित्र बनो अब,
नन्हें-मुन्नों को मुक्त करो अब।
प्रेरक वातावरण बनाओ,
भय तनाव से मुक्ति दिलाओ।।''

महान शिक्षाशास्त्री गिजुभाई ने बालकों के शिक्षण हेतु ऐसे ही चुनौतीपूर्ण कार्य किये हैं।

सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि

देश के अग्रणी बाल शिक्षा शास्त्री गिजुभाई बधेका का जन्म 15 नवम्बर 1885 को गुजरात के चित्तल सौराष्ट्र में हुआ था। इनके पिता भगवान दास जी बधेका और माता काशीबा काफी धार्मिक विचार के थे। गिजु भाई पर भी माता-पिता के धार्मिक विचारों का स्पष्ट प्रभाव पड़ा। पांच वर्ष की आयु में सरस्वती पूजन के साथ उन्हें पढ़ने के लिए बतलभीपूर के प्राथमिक शाला में भेजा गया जहां चारों तरफ मार-पीट, डांट-डपट और भय का साम्राज्य था। गिजुभाई ने यह सब देखा और आगे चलकर प्राथमिक विद्यालय के दृश्यों को शब्दों में बाँधा। बचपन में मिली यातनाओं का उनके जीवन पर इतना अधिक गहरा प्रभाव पड़ा कि उनका समाहार करने के लिए वे वकालत त्याग कर बाल शिक्षण के क्षेत्र में सक्रिय हो गये और आगे चलकर अपने सक्रिय शिष्यों से कहे कि- ''मेरे छात्रों को मेरा आदेश है कि घोड़ों के अस्तबल जैसी धूल भरी इन शालाओं को जमींदोज कर दो। मारपीट और भय दिखाने वाले इन बाल कतलखानों की नीवों को बारूद भरकर उड़ा दो। इन्हें नेस्तानाबूत कर दो।''

इस प्रकार गिजुभाई बालकों की स्वतंत्रता के प्रबल समर्थक थे। उनका मानना था कि बालकों को पूरी स्वतंत्रता देकर ही उन्हें भली प्रकार शिक्षित किया जा सकता है। बालक का अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व है। अपनी इच्छाओं, वृत्तियों एवं सही- गलत के निर्णयों को बच्चों पर लादने से भयंकर परिणाम सामने आ सकते हैं।

भावनगर की 'दक्षिणामूर्ति' संस्था गिजुभाई की शैक्षिक प्रयोगभूमि है जहाँ 1916 से 1936 के मध्य उन्होंने बाल शिक्षा के पहलुओं पर चिन्तन मनन और प्रयोग किया। उनके जीवन का हर पल बच्चों के सानिध्य में गुजरा। वे लगातार बच्चों के साथ बातचीत करते रहते और उनके कोमल मन को समझने की चेष्टा करते रहते। उन्होंने लगभग अपना सारा जीवन बच्चों के इन्द्रिय विकास के खेल ईजाद करने, शांति की क्रीड़ा, शैक्षिक भ्रमण, हाथ के काम, संगीत, नाटक, रचनात्मक कार्यों, बाल संग्रहालय, कथा, कहानी द्वारा शिक्षण आदि विभिन्न प्रवृत्तियों के आयोजन में बिताया। वे बच्चों के साथ मित्रवत और स्नेहपूर्ण ढंग से व्यवहार करते थे। बच्चों की सामर्थ्य क्षमता और प्रयोगशीलता में उनका दृढ़ विश्वास था। वह मानते थे कि बच्चों का अवलोकन करते -करते ही मुझे आत्मावलोकन का अवसर मिला है। जैसा कि गिजुभाई ने कहा है। ''प्रतिपल मैं नन्हें बालकों में बसने वाली महान आत्मा के दर्शन करता हूँ। यह दर्शन मेरे भीतर एक प्रेरणा जगा रहा है कि बालकों के अधिकारों की स्थापना करने के लिए ही मैं जीऊँ और यहीं काम करते -करते मर मिटूँ।''

(शर्मा, 2005)

गिजुभाई की रचनाएं एवं शैक्षिक विचार

गिजुभाई के बाल शिक्षण संबंधी विचार उनकी प्रमुख पुस्तकों 'दिवास्वप्न' (1999), 'मॉन्टेसरी पद्धति (1999), 'प्राथमिक विद्यालय में भाषा शिक्षा'(2001), 'प्राथमिक विद्यालय की शिक्षा पद्धतियाँ'(2001),'माता-पिता से'(2004), 'ऐसे हों शिक्षक' (2001),'बाल-शिक्षण जैसा मैने समझा' (2005),'प्राथमिक विद्यालय में व्यावसायिक शिक्षा' (2001), 'कथा-कहानी' (2000) के अन्तर्गत स्थापित हैं। इसके अतिरिक्त 'चलते-फिरते शिक्षा' (2006),'माँ-बाप बनना कठिन है, (2004), 'माता-पिता की माथापच्ची'(2003),'शिक्षकों से' (2003) आदि रचनाओं से भी उनके विचारों पर प्रकाश पड़ता है।

गिजुभाई के जीवन पर सर्वाधिक प्रभाव मॉन्टेसरी पद्धति का पड़ा। मॉन्टेसरी पद्धति सिर्फ एक शिक्षण पद्धति ही नहीं अपितु जीवन का एक दर्शन है। यह एक नयी दृष्टि

तथा एक नया प्रकाश है जो शिक्षण में एक नयी पद्धति तथा नये आदर्शो का शुभारम्भ करता है। शिक्षक की प्रतिष्ठा में अभिवृद्धि करता है, सामाजिक निर्माण की भूमिका नये सिरे से निर्मित करता है, मनोविज्ञान को नयी दृष्टि प्रदान करता है, व्यक्ति-व्यक्ति, समाज-समाज एवं राष्ट्र-राष्ट्र के बीच संबंधों की नयी कड़ियाँ जोड़ता है तथा मनुष्य की शक्ति और उसके चारित्र्य की सफलता का नया मूल्यांकन करता है (दवे 2005)। 'दिवास्वप्न' गिजुभाई के जीवन्त और सच्चे अनुभवों का निचोड़ है जिसके माध्यम से उनकी कल्पना को मूर्तरूप दिया गया है और प्राथमिक शिक्षा के नवीनीकरण की परिकल्पना को सार्थक किया गया है।

आज यह बात सर्वमान्य है कि जो बालक मानसिक रूप से स्वस्थ है वह हर काम करने की क्षमता रखता है। अर्थात उसे पूर्ण विकसित समझना चाहिए जो कि कुशल और चतुर, दोनों ही होगा। उसमें संकल्प की दृढ़ता होगी, विचारों में स्थिरता होगी और उसका व्यक्तित्व भी विशाल होगा। उसमें जिज्ञासा और ज्ञानार्जन की प्रवृत्ति का बाहुल्य होगा और यदि ये दोनों प्रवृत्तियाँ अनुकूल स्थिति में चलीं तो वह निश्चय ही अपने जीवन में सफल सिद्ध होगा। आवश्यकता इस बात की होती है कि बालक का विकास सही वातावरण में किया जाये। तब उसे चाहे जिस भी तरह का बनाया जा सकता है और वह अपनी उसी दिशा में शीर्ष स्थान पर पहुँच जायेगा। बालक के लिए दरअसल यह आवश्यक नहीं होता कि उसके लिए सारे साधन आप जुटा दें या उसका हर काम, हर गुत्थी आप सुलझा दें। वह यह पसंद भी नहीं करता । उसे तो स्वयं कोई भी काम करके देखने की उत्कण्ठा होती है और इसलिए वह इसमें किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप पसंद नहीं करता। वह तो केवल ऐसा वातावरण चाहता है, जिसमें उसकी कल्पना मुक्त होकर विकसित हो सके, जिसमें उसके विचार स्वतंत्र होकर प्रकट हो सके और जिसमें वह निर्भय होकर अपनी विश्लेषणवादी प्रवृत्ति के आधार पर हर काम को स्वयं करके देख सके।

प्रसिद्ध विचारक और कवि खलील जिब्रान ने लिखा है– ''तुम उन्हें अपना प्यार दे सकते हो, लेकिन विचार नहीं क्योंकि उनके पास अपने विचार होते हैं। तुम उनका शरीर बंद कर सकते हो, लेकिन आत्मा नहीं क्योंकि उनकी आत्मा आने वाले कल में निवास करती है उसे तुम नहीं देख सकते हो, सपनों में भी नहीं देख सकते। तुम उनकी तरह बनने का प्रयत्न कर सकते हो, लेकिन उन्हें अपनी तरह बनाने की इच्छा मत रखना। क्योंकि जीवन पीछे की ओर नहीं जाता और न बीते हुए कल के साथ रूकता है।''

गिजुभाई के अनुसार शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो बालक को स्वावलंबी, निर्भय, सृजनशील या हुनरमंद और अभिव्यक्तिशील बनाये। वह बालकों को तरह-तरह के विषय पढ़ाने के पक्षधर नहीं थे और न ही यह समझ पाये कि बालकों के लिए क्या उचित और क्या अनुचित है, क्या नुकसानदेह और क्या फायदेमंद है। उनकी दृढ़ मान्यता थी कि बाल- विकास के अवलोकन की कोशिश तथा प्रबंध में बालकों का शिक्षण प्रबंध भी स्वत: होता जायेगा। इस प्रकार गिजुभाई का सम्पूर्ण शिक्षा दर्शन बालक के इर्द-गिर्द घूमता है। उनकी स्वाभाविक वृत्तियों का सही तरीके से विकास करना ही शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य है। गिजुभाई के शिक्षण का आधार व्याख्यान नहीं वार्तालाप था। वह बालकों को खेल पद्धति द्वारा पढ़ाते हुए, गाना गाते हुए कार्य करना, वाद्य यंत्र बजाकर नृत्य कराते हुए, कहानी लिखवाकर, नाटक करके, बागवानी द्वारा, प्रकृति के निरीक्षण द्वारा स्वतंत्र भ्रमण कराते हुए ज्ञान प्रदान करते थे। उनका मानना था कि इस प्रकार से प्राप्त ज्ञान स्थायी होता है और बालक का पूर्णरूपेण सांवेगिक व भावात्मक विकास होता है। वर्तमान समय में भी निरन्तर ऐसे शोध हो रहे हैं जिसके अन्तर्गत शिक्षण में वार्तालाप की प्रासंगिकता को प्रस्थापित किया जा रहा है। बेसिक स्किल एजेन्सी' के निर्देशक एलन वेल्स कहते हैं कि ''वार्तालाप द्वारा बच्चों के कौशलों का शीघ्र विकास किया जा सकता है। जैसे-पढ़ना, लिखना, बोलना, गणना करना आदि।'' इस प्रकार गिजुभाई के शैक्षिक प्रणाली की निम्नलिखित विशेषतायें परिलक्षित होती हैं:

- बालकों के वैयक्तिक विकास को महत्व दिया गया है।
- बालकों में सृजनात्मक क्षमता के विकास को महत्व दिया गया है।
- गिजुभाई की शिक्षण पद्धति स्वभाविकता पर आधारित है न कि कृत्रिमता पर।
- अनुशासन के लिए स्वक्रिया एवं स्वप्रेरणा का होना आवश्यक है न कि भय और दण्ड का।
- लिखने-पढ़ने की अनोखी पद्धति का विकास तथा स्वशिक्षा को महत्व दिया गया है।
- सामाजिकता तथा व्यवहारिकता के विकास पर बल दिया गया है।
- शिक्षक की भूमिका एक मित्र, सहायक तथा पथ प्रदर्शक के रूप में प्रस्थापित किया गया है।

(द हिन्दू 2005)

प्राथमिक शिक्षा एवं शिक्षण विधियाँ

स्वतंत्रता प्राप्ति के समय से लेकर आज तक प्राथमिक शिक्षा के विकास हेतु सरकार द्वारा अनेक प्रयास किये जा रहे हैं, करोड़ों रुपये खर्च हो रहे हैं। इसके बावजूद भी अपेक्षित परिणाम सामने नहीं आ रहे हैं। इस असफलता का सबसे प्रमुख कारण है वर्तमान कक्षायी शिक्षण प्रक्रिया। आज का विद्यार्थी कक्षा में अधिकांश समय शिक्षक द्वारा कहे गये कथनों को सुनने में व्यतीत करता है। इससे वह बौद्धिक ज्ञान तो प्राप्त करता है लेकिन उस ज्ञान को व्यक्त करने एवं व्यवहार में प्रयोग करने में वह असफल रहता है। मनोवैज्ञानिक अनुसंधानों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि छात्र एक ही क्रिया अधिक समय तक करते रहने से उदासीन हो जाते हैं जिससे उनका ध्यान केन्द्रित नहीं हो पाता और जो बालक का अधिगम होता है वह स्थायी न होकर क्षणिक होता है।

अत: आज आवश्यकता इस बात की है कि शिक्षकों को उन नयी प्रक्रियाओं की ओर उन्मुख किया जाए व उनमें जागरूकता उत्पन्न की जाय जिससे विद्यार्थी कक्षा में सक्रिय रहते हुए पूर्ण मनोयेाग से रुचिपूर्वक ज्ञान प्राप्त कर सके एवं प्राप्त ज्ञान का व्यावहारिक प्रयोग कर सके।

प्रसिद्ध बाल शिक्षा शास्त्री गिजुभाई ने ऐसी अनेक रोचक शिक्षण पद्धतियों का सूत्रपात किया है जिसे अपनाकर वर्तमान शैक्षिक प्रक्रिया के दोषों को दूर किया जा सकता है।

प्रमुख शिक्षण पद्धतियाँ हैं– प्रश्नोत्तर पद्धति, जोड़ीदार पद्धति, नाट्य प्रयोग पद्धति, स्वशिक्षण पद्धति, श्रवण पद्धति, चलचित्र पद्धति, प्रत्यक्ष पद्धति, कक्षा पद्धति, उन्मेष पद्धति, खेल पद्धति, सिद्धांतमूलक और दृष्टान्तमूलक पद्धतियाँ इत्यादि।

विषय की प्रकृति और कक्षास्तर को ध्यान में रखते हुए शिक्षण के चयन पद्धति का समर्थन करते हुए गिजुभाई का मानना है कि प्रश्नोत्तर पद्धति विशेष रूप से प्राथमिक विद्यालयों की शुरू की कक्षाओं में सफल हो सकती है। प्राथमिक शालाओं में अनुभव, प्रयोग और अवलोकन के सहारे ही ज्ञान का मार्ग खुलना चाहिए। भाषा, गणित, इतिहास और भूगोल को पढ़ाने में नाट्य प्रयोग पद्धति का अच्छा उपयोग किया जा सकता है। यह एक ऐसा सुंदर साधन है जिसकी मदद से इतिहास को दृष्टि देने का काम, विषय के प्रति रूचि जगाने और तथ्यों को सरलता से याद किया जा सकता है। स्वयं शिक्षण

पद्धति में बालक स्वयं ही ज्ञान प्राप्त करता रहता है। शिक्षक बालक को सीधे-सीधे सिखाता नहीं बल्कि ऐसे प्रबोधक वातावरण की रचना कर देता है जिससे विद्यार्थी स्वयं ही इस वातावरण में आने के लिए उत्प्रेरित होता है और अपनी पसंद के काम को चुनकर स्वयं ज्ञान प्राप्त करके अपनी शक्तियों का विकास करता है। श्रवण पद्धति के माध्यम से ही छोटे-छोटे बच्चों को मातृभाषा सिखायी जाती है। बालकों को बार-बार कहानियों के द्वारा श्रवण करने से बहुत कुछ बातें बिना रटे ही जबानी याद करायी जा सकती हैं। इसके साथ ही साहित्य -सृजन की शक्ति भी विकसित की जा सकती है। बच्चों को जो कुछ सीखना हो यदि उसे प्रत्यक्ष अनुभव द्वारा सिखाया जाए तो वे जल्दी सीखते हैं। गिजुभाई ने अपने शैक्षिक प्रयोगों में कहानी के माध्यम से विभिन्न विषयों की जानकारी सुरुचिपूर्ण ढंग से दी। गिजुभाई का मानना था कि ज्ञान प्राप्त करने की बालक की अपनी कुछ स्वाभाविक आदतें होती हैं, जैसे- ज्ञात में से अज्ञात में जाना, स्थूल से सूक्ष्म में जाना, अपनी उम्र के हिसाब से विकसित इन्द्रियों द्वारा ज्ञान प्राप्त करना। यदि बालक की इन सहज प्रवृत्तियों को ध्यान में रखकर शिक्षण किया जाए तो वह अधिक प्रभावशाली होगा। उन्मेष पद्धति में पहले स्थूल बातें सिखायी जाती हैं। बाद में उनके आस-पास की छोटी-छोटी बातें और अन्त में बिल्कुल सूक्ष्म बातें। इस तरह बालक सरलता पूर्वक तथ्यों का ज्ञान प्राप्त कर लेता है। इतिहास का शिक्षण इस विधि द्वारा किया जा सकता है। गणित, व्याकरण आदि विषयों में भी इस पद्धति का प्रयोग लाभदायक है। गिजुभाई खेल विधि द्वारा पढ़ाने के प्रबल समर्थक थे। उनका मानना था कि यदि शिक्षक बालकों के साथ घुल-मिलकर विभिन्न खेलों के माध्यम से ज्ञान प्रदान करें तो वह बच्चों का सबसे प्रिय शिक्षक बन जाएगा और इस तरह बालक जब अपनी रुचि, क्षमता और योग्यता के अनुसार ज्ञान प्राप्त करेगा तो वह आगे चलकर एक योग्य, बुद्धिमान, कर्त्तव्यनिष्ठ व सृजनशील नागरिक बनेगा। आज की शिक्षा व्यवस्था में वैज्ञानिक दृष्टि का विकास बहुत महत्व की बात है। अतः बाल कक्षा से लेकर आगे तक विद्यार्थियों को दृष्टान्त मूलक पद्धति से पढ़ाया जाना चाहिए।

इस प्रकार भारतीय दार्शनिकों-अरविंद, गांधी, टैगोर की भांति गिजुभाई ने भी समाज में व्याप्त विसंगतियों एवं आधुनिक शिक्षा प्रणाली की दुष्प्रवृत्तियों को दूर करने के लिए शिक्षा को एक सशक्त माध्यम के रूप में स्वीकार किया है। उनके व्यक्तित्व की यह विशेषता है कि उन्होंने अपने विचारों को एक सफल शिक्षक के रूप में जिया।

गिजुभाई ने बाल-शिक्षा की एक विशाल लहर खड़ी करने का अथक प्रयास किया। उन्होंने जिन सिद्धांतों की नींव रखी आज सम्पूर्ण शिक्षा जगत उनके समक्ष नतमस्तक है। गिजुभाई ने बालक के अनुभवात्मक तथा अभिव्यक्तात्मक, दोनों प्रकार की क्षमताओं के विकास को महत्व दिया है। गिजुभाई की शिक्षण पद्धति स्वभाविकता पर केंद्रित थी न कि कृत्रिमता पर। शिक्षक ऐसे प्रबोधक वातावरण की रचना कर देता है कि विद्यार्थी स्वयं अपने प्रयास से अपनी गलतियों में सुधार करते हुए अपने लिए आवश्यक शिक्षा प्राप्त करता है। गिजुभाई न केवल बच्चों की क्षमता और बौद्धिकता में विश्वास व्यक्त करते थे अपितु वे उनकी सृजनात्मकता में भी अगाध आस्था रखते थे। वह मानते थे कि केवल परीक्षा पास करना ही पर्याप्त नहीं है। शिक्षा द्वारा बालक में तर्क, चिंतन, विश्लेषण आदि गुणों का विकास होना भी आवश्यक है। गिजुभाई के शैक्षिक विचारों में बाल सम्मान का विवेचन और विश्लेषण जिस प्रभावपूर्ण और सरल शैली में हुआ है और बालकों के शिक्षण हेतु जो नये-नये प्रयोग किये गए हैं वह आधुनिक शिक्षा व्यवस्था के नवीनीकरण के लिए आधार स्तंभ हैं। वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में उनके सिद्धांतों की अनुगूँज को सुना जा सकता है। इस प्रकार शिक्षा को नयी दिशा देने वाले गिजुभाई का योगदान सदैव चिरस्मरणीय रहेगा।

प्राथमिक शिक्षा की समस्याओं के संदर्भ में गिजुभाई के विचारों का अनुप्रयोग

सही संदर्भों में प्राथमिक शिक्षा ही जीवन की प्रयोगशाला है लेकिन प्राथमिक शिक्षा में अनेक समस्याएं विद्यमान हैं जो अधोलिखित है :

- बालकों के ऊपर अत्याधिक शैक्षिक बोझ का होना।
- शिक्षा के प्रति बच्चों में जिज्ञासाओं का अभाव।
- पाठ्यक्रम का अमनोवैज्ञानिक होना।
- शैक्षणिक वातावरण में अतिकृत्रिमता।
- बाल मनोवृत्ति पर ध्यान न दिया जाना।
- पाठ्यक्रम का बालकेंद्रित न होकर शिक्षक केंद्रित व विषय वस्तु केंद्रित होना।
- बालकों में सृजनात्मक गुणों के विकास पर बल न देना।
- शिक्षकों में प्राथमिक शिक्षा के प्रति उदासीनता एवं संवेदनहीनता।
- पाठ्य सहगामी क्रियाओं का समुचित प्रयोग न होना।

- शिक्षकों में अभिभावकत्व बोध की कमी।
- प्राथमिक शिक्षा का माध्यम मातृभाषा न होकर अन्य माध्यम का होना।
- विद्यालयीय शिक्षा का झुकाव प्रश्न करने की ओर नहीं बल्कि बने-बनाये उत्तर देने की ओर होना।
- शिक्षा का एक मात्र उद्देश्य परीक्षा में अधिक से अधिक अंक प्राप्त करना।

एकमात्र गिजुभाई ही ऐसे महान भारतीय शिक्षा शास्त्री हुए हैं जिनका अध्ययन क्षेत्र बालकेंद्रित शिक्षा, बालशिक्षण पद्धति एवं बाल मनोविज्ञान से संबंधित रहा है। अत: उपरोक्त समस्याओं के आलोक में यदि गिजुभाई के विचारों को प्रस्थापित किया जाए तो उससे प्राथमिक शिक्षा की जो विसंगतियाँ हैं उन्हें दूर किया जा सकता है एवं प्राथमिक शिक्षा को वास्तविक अर्थों में जीवन की प्रयोगशाला के रूप में स्थापित किया जा सकता है जिसके फलस्वरूप –

- शैक्षिक वातावरण आन्ददायी होगा और छात्रों को स्वस्फुरण के अवसर प्रदान होंगे।
- बालकों में आंतरिक क्षमताओं का पूर्ण विकास होगा।
- बालकों में शिक्षा के प्रति अरूचि की जगह जिज्ञासा, उत्साह, निडरता और मित्रता जैसे गुणों का पोषण होगा।
- शिक्षकों की एकतरफा भूमिका समाप्त होगी और बालकों को स्वयं को जांचने व परखने का अवसर प्राप्त होगा।
- बालकों में तर्क, चिन्तन, विश्लेषण व वर्गीकरण करने तथा सृजनात्मक क्षमता का विकास होगा।
- बालकों में दण्डात्मक अनुशासन के बजाय स्वक्रिया एवं स्वप्रेरणा के द्वारा अनुशासन स्थापित होगा।
- नाट्य, गीत, नृत्य, संगीत, निबंध शैली की प्रस्तुति आदि के क्रिया-कलापों से शैक्षिक वातावरण रोचक होगा।
- बालकों को क्रियाशील, कल्पनाशील और प्रयोगशील बनाने में शिक्षक की अहम् भूमिका होगी।
- बालकों को आनंददायी शिक्षा की ओर अभिप्रेरित किया जा सकेगा।

संदर्भ

गोसालिया, दिव्या (2004): *''गिजुभाई का शैक्षिक दर्शन''* परिप्रेक्ष्य, वर्ष 11, अंक-2, अगस्त।

दवे, दीनानाथ (2001): *''प्राथमिक विद्यालय की शिक्षा पद्धतियाँ''* जयपुर: गीतांजली प्रकाशन।

दवे, दीनानाथ (2004): *''माता-पिता से''* जयपुर: गीतांजली प्रकाशन।

दवे, दीनानाथ (2001): *''प्राथमिक विद्यालय की भाषा शिक्षा''* जयपुर: गीतांजली प्रकाशन।

दवे, दीनानाथ (2006): *''चलते -फिरते शिक्षा''* जयपुर: अंकित पब्लिकेशन।

दवे, रमेश (2004): *''माँ-बाप बनना कठिन है''* दिल्ली:संस्कृति साहित्य विश्वास नगर, शाहदरा।

दवे, रमेश(2000): *''कथा-कहानी''* दिल्ली: संस्कृति साहित्य विश्वास नगर, शाहदरा।

दवे, दीनानाथ (2003): *''शिक्षकों से''* जयपुर: गीतांजली प्रकाशन

धनखड़ नीरजा (2003): *''गिजुभाई बधेका: दिवास्वप्न एक विश्लेषण''* भारतीय आधुनिक शिक्षा'' अक्टूबर, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और परिक्षण परिषद, नई दिल्ली।

प्रकाश, सूरज (1332): *''दिवास्वप्न''* (शिक्षा संबंधी प्रयोगों की कहानी) नई दिल्ली: प्रकाशन संस्थान।

बेस्ट, जॉन डब्लू व कॉन, जेम्स वी. (1332): *''रिसर्च इन एजुकेशन''* नई दिल्ली: प्रेन्टिस हाल ऑफ इण्डिया प्रा.लि.।

मॉसेल्कर, आर.ए. (1999): *''ए फाइव प्वाइन्ट न्यू मिलेनियम इण्डियन एजेण्ड''* यूनिवर्सिटी न्यूज वा 37, नं.-28 ए.आई.यू., नई दिल्ली

सोनी, रामनरेश (1999): *''मान्टेसरी पद्धति''* आगरा: वाग्देवी प्रकाशन।

शर्मा, उषा (2005): *''गिजुभाई का शिक्षा दर्शन''* परिप्रेक्ष्य वर्ष 12, अंक-2, अगस्त, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली

पाल, यश (2005): *''दि हिन्दू''* फार ए चाइल्ड इन्सपायर्ड एजुकेशन सिस्टम, 6 सितम्बर।

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 14, अंक 3, दिसंबर 2007

विमर्श

पाठ्यपुस्तक निर्माण प्रक्रिया के प्रभावकारी कारक और शिक्षाशास्त्रीय अपेक्षाएं

भाषा की पाठ्यपुस्तकों के संदर्भ में एक विमर्श

लालचंद राम*

कोई पाठ्यपुस्तक किसी कक्षा विशेष के लिए क्यों तैयार की जाती है? क्यों नहीं किसी स्वतंत्र पुस्तक या टेक्स्ट को सीधे कक्षा विशेष के लिए निर्धारित कर दिया जाता या अनुशंसित कर दिया जाता है। इस तरह के सवाल भी उठाए जाते रहे हैं। बात बहुत साफ है कि कक्षा विशेष के लिए तैयार की गई पाठ्यपुस्तक का निश्चित, ठोस उद्देश्य होता है। वह यह है कि उस विशेष कक्षा के विद्यार्थी की आयु वर्ग, रुचि और योग्यता को ध्यान में रखकर पाठों का चयन होता है। यह नहीं कि कोई एक विधा की कोई सामग्री ली और पाठ्यपुस्तक में लगा दी। एक-एक पाठ चुनने के लिए सौकड़ों पाठों को पढ़ना पड़ता है और प्रत्येक दृष्टि से उसका विवेचन, विश्लेषण विद्वान-विशेषज्ञों के बीच करना पड़ता है। तब वह पाठ कक्षा विशेष के लिए चुना जाता है। पाठ चुनने का आधार विषयवस्तु (थीम), भाषाई क्षमता, समझ का स्तर, वर्तमान से उसकी सार्थकता, प्रासंगिकता, विषय-विशेष से उसके सरोकार, बोध के स्तर पर ग्राह्यता, मूल्य, संदेश या जीवन जगत से उसका सरोकार, संबंध आदि है। अगर इन कसौटियों पर कोई पाठ खरा नहीं उतरता है तो जाहिर है उसे पाठ्यपुस्तक में स्थान नहीं मिलेगा। हिंदी साहित्य की परंपरा और विरासत में वह पाठ कहाँ स्थान रखता है, तक का ध्यान रखना पड़ता है। अतीत या इतिहास से उसके क्या सरोकार हैं? वह कहीं किसी स्थान, महत्व के योग्य है कि नहीं, वह कहीं किसी भी स्तर पर विद्यार्थी में प्रेरणा, प्रोत्साहन, नैतिकता,

* प्रवक्ता, भाषा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली-110 016

मूल्य तथा संदेश दे रहा है कि नहीं। आकार-प्रकार की दृष्टि से बोझिल तो नहीं। भाषा, पाठ्यसामग्री तथा संप्रेषण के ढंग में कोई बाधा, रूकावट तो नहीं-इन सारी बातों का ध्यान रखना पड़ता है। उस पाठ का संबंध समकालीन विमर्शों, समय की माँग एवं जरूरत के अनुसार है या नहीं। विद्यार्थी अपने जीवन-जगत, आचार-विचार, व्यवहार से उसको कहीं से जोड़ पाएगा कि नहीं, कहीं वह पाठ अमूर्तन की ओर तो नहीं ले जा रहा है इत्यादि बातों का ध्यान रखकर ही पाठ्यपुस्तक के लिए पाठों का चयन किया जाता है। यही नहीं, इस बात का भी ध्यान रखा जाता है कि विद्यार्थी का अब तक का अर्जित ज्ञान उससे जुड़कर संवर्धित हो, उसमें विद्यार्थी की सहभागिता हो जिससे उस पाठ की सार्थकता एवं प्रासंगिकता का पता चलता है। यह नहीं कि विद्यार्थी के मस्तिष्क में पाठ की मूल संवेदना पहुँचे ही नहीं। ऐसा पाठ अजनबियत का अहसास कराएगा। पाठ की प्रासंगिकता-सार्थकता के लिए, समय के सरोकारों-मुद्दों से जोड़ने के लिए तथा विद्यार्थी में आलोचनात्मक विवेक जागृत करने के लिए पाठ संबंधी प्रश्न-अभ्यास दिए जाते हैं। साथ ही लेखक परिचय और रचना परिचय भी ताकि विद्यार्थी उस लेखक के बारे में पढ़ सकें, उनकी अन्य रचनाओं को पढ़कर, अपना ज्ञान सवंर्धन कर सकें तथा अपने समय-समाज के इतिहास को जान सकें। चूँकि पाठ्यपुस्तक का स्वरूप अखिल भारतीय होता है इसलिए पाठ में अखिल भारतीयता तथा सामाजिक संस्कृति का पुट भी होना जरूरी समझ जाता है। विविधता तो उसकी शर्त है ही।

वैसे भी पाठ्यपुस्तक निर्माण में समय-समाज से जुड़े बौद्धिक विमर्श जो समय दर समय चलते रहते हैं उनकी अनदेखी नहीं की जा सकती, को शामिल किया जाना चाहिए। ऐसा नहीं कि वर्तमान समय में बनी पाठ्यपुस्तक अपने समय से 25-30 साल पुरानी प्रतीत हो। उसमें नयापन होना ही चाहिए। वर्तमान दौर के शैक्षिक विमर्श और सरोकारों से उसका मेल होना ही चाहिए। तभी वह वर्तमान के अनुकूल होगी, तभी शिक्षण-प्रशिक्षण की दुनिया में ग्राह्य एवं स्वीकार्य होगी और शिक्षक-प्रशिक्षक समाज उसे अपना सकेगा। अब यह माँग उठने लगी है कि पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम एवं पाठ्यपुस्तकों में दलित समाज, स्त्री समाज, आदिवासी अल्पसंख्यक समाज कहाँ हैं, किस मात्रा में हैं? उनकी उपस्थिति है कि नहीं? यह भी साथ-साथ सवाल उठने लगा है कि पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम एवं पाठ्यपुस्तक निर्माण में उनकी सहभागिता है कि नहीं। अगर नहीं है तो क्यों नहीं? उन्हें कब तक हाशिए पर रखा जाएगा, आखिर उनके हितों की

बात, उनके सामाजिक हितों की बात कोई गैर क्यों उठाएगा। जिस शिक्षा को प्राप्त कर वे अपना भविष्य संवारेंगे अगर उसी में वे अनुपस्थित हैं, उसी में हाशिए पर हैं तो वह ग्राह्य कैसे होंगी, उसे वे अपना कैसे मानेंगे? खैर इस तरह के अनेक सवालों से बचने के लिए अंतरा-1 पाठ्यपुस्तक में ओम प्रकाश बाल्मीकी की कहानी 'खानाबदोश' रखी गई थी वह भी काफी जद्दोजहद के बाद। यह कहानी दलित पीड़ा एवं अभिव्यक्ति की कहानी है जिसमें श्रम की महत्ता एवं श्रम-सौंदर्य को प्रतिष्ठित किया गया है। दलित समाज की पीड़ा और संघर्ष को भी सांकेतिक रूप से इस कहानी में उभारा गया है।

अब तथाकथित बौद्धिक समाज में यह दर्द उठने लगा है कि किसी दलित को पाठ्यपुस्तक में स्थान क्यों दिया गया? प्रश्न बिल्कुल जायज है क्योंकि अब तक तो उन्हें मौका नहीं दिया गया था, उन्हें हाशिए पर धकेला गया था। शिक्षा के क्षेत्र में उन्हें और उनके समाज को अनदेखा किया जाता रहा है फिर अचानक वह पाठ्यपुस्तक में कैसे? क्योंकि यह तो गैर दलितों का विशिष्ट क्षेत्र है। इसमें उन्हें वर्दाश्त नहीं किया जा सकता। इसलिए तरह-तरह के सवाल खड़ा किए जा रहे हैं, उनकी भाषा और शिल्प की बात की जा रही है, शैक्षिक संस्कार और कुसंस्कार की बात की जा रही है, शिक्षा और कला की कसौटी पर उनकी रचनाओं को कसने की बात की जा रही है।

अब एक रचनाकार से जिस समाज में वह रहता है, जीता है, उसकी संवेदना से अलग उसे कैसे किया जाए? क्या यह संभव है कि जिस समाज में वह रहता है, उस समाज की जीवनाभूतियों, संवेदनों को अपनी रचना का विषय न बनाए, उससे न जोड़े क्या यह संभव है कि जिस परिवेश में वह रहता है उस परिवेश की घटना, स्थिति-परिस्थिति का कोई शब्द न आए? जो भाषा उस परिवेश में, समाज में बोली जाती है उस भाषा का कोई शब्द न आए? सही मायने में रचना और रचनाकार की महत्ता एवं सार्थकता इस बात में है कि वह अपनी भाषा का चुनाव भी उसी भावभूमि, समाज-परिवेश से करे, जिस परिवेश और भावभूमि की घटना या स्थिति का चित्रण वह अपनी रचना में करता है, भाषा भी वहीं से ले। यह नहीं कि बात तो इस युग की कर रहा है, समस्याएँ इस युग की उठा रहा है और भाषा 18वीं सदी की प्रयोग करे या फिर सभ्य समाज की भाषा गढ़े। बार-बार यह प्रश्न उठता रहा है कि पाठ्यपुस्तक की भाषा विद्यार्थियों के परिवेश

में इस्तेमाल की जाने वाली शब्दावली, मुहावरों तथा अभिव्यक्तियों से भिन्न है। इसलिए पाठ्यपुस्तक विद्यार्थी को आकृष्ट करने की बजाय बोझिल, उबाऊ और नीरस लगने लगी है। जाहिर है पाठ्यपुस्तक की भाषा विद्यार्थी के जीवन से दूर रहेगी, आम जन-जीवन से दूर रहेगी तो बोझिल, उबाऊ और नीरस लगेगी ही। पिछले दिनों एन. सी.ई.आर.टी. द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'अंतरा' बेवजह विवादों में रही। इस पाठ्यपुस्तक में शामिल दलित लेखक, ओमप्रकाश बाल्मीकी की कहानी 'खानाबदोश' दलितों, श्रमिकों, मजदूरों की स्थिति का बयान करती है। कहानी की भाषा, शिल्प, शब्द, मुहावरे भी उस दलित, मजदूर सामज को अभिव्यक्ति देने में सशक्त साबित हुए हैं। कहानी 'खानाबदोश' में जातिसूचक शब्द का उल्लेख हुआ है। इस शब्द के हटा देने से कहानी की मार्मिकता, प्रसंग और घटनाशीलता गायब हो सकती है। इसलिए उस शब्द को यथावत रखा गया था यूँ कहें कि कहानी की मूल संवेदना उस शब्द के हटाने से हट सकती है। जबकि पाठकों की सुविधा के लिए उसी पृष्ठ पर एक टिप्पणी (फुटनोट) दिया गया था कि ''ऐसे शब्दों का प्रयोग असंवैधानिक है। समाज के यथार्थ प्रतिविम्बन के लिए लेखक कई बार ऐसे शब्दों का प्रयोग साहित्य में करते हैं, किंतु इसे व्यवहार में नहीं लाया जाना चाहिए।''

अब साहित्य में सेंसर लगने शुरू हो गए हैं। बार-बार यह पूछा जा रहा है कि ऐसे शब्दों का प्रयोग कर विद्यार्थियों में जातिभेद पैदा किया जा रहा है, समाज में विघटन, विद्वेष पैदा किया जा रहा है। जैसे लगता है कि सामज में यह सब है ही नहीं या यह लेखक की कल्पना मात्र है। यह कैसा शुद्धतावाद है कि समाज में, व्यवहार में सब चलेगा लेकिन लिखा न जाए, न ही उसे रचना का विषय बनाएं, विरोध न करें। जबकि बात बिल्कुल अलग है। 'घाव दिखाकर ही घाव का इलाज किया जा सकता है' के माध्यम से लेखक ने समाज का सच उद्घाटित किया है। एक तरह से इस तरह के तर्कहीन प्रश्न खड़ा करके यह कोशिश की जा रही है कि दलित साहित्यकारों को पाठ्यपुस्तक से निकाल दिया जाए। यहाँ उनका प्रवेश ठीक नहीं है। दूसरे शब्दों में या साफ-साफ कहें तो दलित साहित्य का विरोध किया जा रहा है।

भाषा और साहित्य का विद्यार्थी होने के साथ ही यही कहा जा सकता है कि ऐसी दृष्टि विकसित की जानी चाहिए कि साहित्य को साहित्य समझा जाय। जाति सूचक

शब्द शिक्षण बिंदु के रूप में पाठ्यपुस्तक में नहीं पढ़ाए जा रहे हैं और न ही उन शब्दों पर विशेष फोकस दिया गया है। वे शब्द किसी घटना प्रसंग में सहज भाव से आए हैं और आए हैं तो पूरी जीवंतता के साथ हैं। भाषा और साहित्य के क्षेत्र में बहुआयामी लेखन चल रहा है और अगर जातिवाद से ऊपर उठकर बात करें तो समाज में शोषण, उत्पीड़न, दमन को समाप्त करने के लिए चौतरफा लेखन चल रहा है। सभी लोग लिख रहे हैं किंतु उसकी प्रामाणिकता और अप्रामाणिकता, सहानुभूति और स्वानुभूति के चक्कर में उसे अब तक अनदेखा किया जाता रहा है। अब समय आ गया है कि उसे नोटिस लिया जाए। इसी नोटिस का प्रयास समझिए कि ओम प्रकाश बाल्मीकी जैसे रचनाकार पाठ्यपुस्तक में स्थान पा सके हैं। 'राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2005' में बहुभाषिकता पर बल दिया गया है। बहुभाषिकता को ध्यान में रखकर ही विभिन्न भाषाओं के शब्द जो आमफहम हो गए हैं, जो समाज में रच बस गए हैं उनको लेकर पाठ्यपुस्तक में कोई परहेज नहीं किया जाता है और न ही परहेज किया जाना चाहिए। अंग्रेजी फारसी, उर्दू, अरबी के जो शब्द और भारतीय भाषाओं के जो शब्द हिंदी समाज में प्रयोग किए जाते हैं, इस पुस्तक में भी उनका प्रयोग किया गया है। हिंदी साहित्य में जो शब्द प्रयोग किए गए हैं उनको अलगाना और छाँटना भारतीय संविधान का उल्लंघन करना है, भारत की सामासिक संस्कृति का मजाक उड़ाना है। जो इस तरह का प्रश्न खड़ा कर रहे हैं कि हिंदी भाषा–साहित्य शिक्षण में या पाठ्यपुस्तकों में ऐसे शब्द नहीं प्रयोग किए जाने चाहिए उन्हें यही कहना हैकि अपनी दृष्टि बदलें, अपनी सोच बदलें।

शुद्धतावाद और अतिशुद्धतावाद से हिंदी का बहुत नुकसान हुआ है। हिंदी पाठ्यपुस्तक से विद्यार्थी भाग रहा है, हिंदी पढ़ना छोड़ रहा है। आदर्शवाद और शुद्धतावाद उसके किसी काम नहीं आ रहा है। विद्यार्थी की रुचि, उम्र और योग्यता को ध्यान में रखकर ही ये प्रयोग किए गए हैं कि वह इसे अपनाए। समाज की सच्चाई या उसके यथार्थ से विद्यार्थी को परिचित कराना कतई अपराध नहीं है, वह भी उस समाज और यथार्थ से जिसमें वह जी रहा है। सच्चाई और यथार्थ से वह जितना अधिक रूबरू होगा उतना ही उसका आत्मविश्वास बढ़ेगा और चीजों के प्रति अधिक संवेदनशील बनेगा। वरना आदर्शवाद और शुद्धतावाद हवाई किले या रेत की दीवार की तरह ढहेगा, दम तोड़ेगा और विद्यार्थी निराश और हताश होकर आत्महत्या की ओर बढ़ेगा। अतीत की घटनाओं को उदाहरण के रूप में गिनाया जा सकता है।

इसी पाठ्यपुस्तक में दूसरा पाठ है सुदामा पांडेय धूमिल की कविता ''मोचीराम'' जिसकी दो पंक्तियों पर आपत्ति है, जो इस प्रकार है- और ''बाबूजी! असल बात तो यह है कि जिंदा रहने के पीछे/अगर सही तर्क नहीं है/तो रामनामी बेचकर या रंडियों की दलाली करके रोजी कमाने में/कोई फर्क नहीं है।'' और आपत्ति यह है कि यह कोई कविता है? यह कविता ही नहीं है। यह सर्वविदित है कि प्रमुख कवि सुदामा पांडेय धूमिल अपने समय के सिर्फ कवि नहीं बल्कि एक आंदोलन रहे हैं और वह जीवंत आंदोलन उनकी कविताओं से झाँकता, निहारता प्रतीत होता है। सच बात तो यह है कि समाज के हाशिए पर खड़े व्यक्ति मोचीराम को धूमिल ने अपनी कविता का पात्र एवं विषय बनाया है। अगर ध्यान दें तो कथा साहित्य में पहली बार किसान, मजदूर एवं दलितों को प्रेमचंद ने अपनी रचना का नायक बनाया। धूमिल की रचना का प्रमुख पात्र 'मोचीराम' उसी दृष्टि का परिणाम है-जहाँ मनुष्य की लघुता उसकी महत्ता का प्रर्याय बन गई है। मोची राम के बहाने धूमिल ने समूचा जीवन दर्शन उड़ेल दिया है। उन्होंने इस कविता में समकालीन राजनीतिक परिवेश में जी रहे जागरूक 'व्यक्ति' की तस्वीर पेश करने का प्रयास किया है। इसके माध्यम से धूमिल ने हाशिए के समाज को कविता के केंद्र में लाने का प्रयास किया है। मानव जीवन की मानवीयता के प्रति धूमिल के मन में अगाध करूणा है, पर धूमिल को लगता है कि समकालीन परिवेश इस मानवीयता का शत्रु है। इसलिए उनकी कविताओं में करूणा और आक्रोश का स्वर एक साथ सुनाई पड़ता है। साहित्य की विशिष्टता ही कही जाएगी कि जो पात्र, घटनाएँ, स्थितियाँ कूड़ा कचरा समझकर हाशिए पर फेंक दी जाती हैं वही साहित्य में कभी-कभी विशेष स्थान बना लेती हैं। मोचीराम के बारे में भी यही कहा जा सकता है। दरअसल 'मोचीराम' आम आदमी का प्रतीक है जो आधुनिक जीवन के व्यवसायीकरण का शिकार है। इस व्यावसायिक वृत्ति ने मनुष्य को मात्र खरीद-फरोख्त की वस्तु बना दिया है। धूमिल को ऐसे आदमी की तलाश है जो रंग-जाति-भाषा आदि के उभरे भेद से परे है। मोचीराम की खोज उन्होंने उसी रूप में की है जिसके माध्यम से उन्होंने जीवन जीने के तर्क को प्रस्तुत किया है। व्यावसायिक वृत्ति ने मनुष्य को शार्टकट चलना सिखा दिया है। मानवीय रिश्ते, संबंध आदि व्यावसायिकता में बदल रहे हैं। कितना बड़ा संकट खड़ा किया जा रहा है। उस स्थिति-परिस्थिति में आम आदमी की क्या हैसियत एवं विसात होगी? तभी वह रामनामी बेचकर और रंडियों की दलाली कर रोजी कमाने

वाले से मोची राम को बेहतर मानते हैं। इस व्यावसायिकता की उपज है रामनामी बेचना । यानी एक तरह से धूमिल ने राम के नाम पर व्यावसायिक वृत्ति का विरोध किया है। रंडियों की दलाली कौन करता है? वह जो कामचोर हो, अति महत्वाकांक्षी हो मेहनत से जी चुराता हो, बहुत बड़े- बड़े हवाई किले बनाता हो- उसे शार्टकट के रास्ते बहुत जल्दी मंजिल पाने की उत्कट आकांक्षा हो। वही रंडियों की दलाली कर रोजी कमाता है, पेट पालता है। उसके सामने जीवन जीने का सही तर्क नहीं है, कोई विवेक और बुद्धि नहीं है, आलोचनात्मक विवेक नहीं है, सही-गलत की पहचान नहीं है। रंडियों की दलाली कर रोजी कमाना जीवन संघर्ष से पलायन है, दूर भागने की कोशिश है। धूमिल उसको ललकारते हैं और एक जीवन-दर्शन पेश करते हैं। यह व्यावसायिकता ही है जो मनुष्य को मनुष्य का दुश्मन बना रही है, मानवीय संबंधों, रिश्तों में जो खिंचाव, दूरी और टूटन है- यही उसी व्यावसायिकता का परिणाम है। जहाँ मानवीय संबंध महत्वपूर्ण नहीं हैं। महत्वपूर्ण है भोग और उपभोग-धूमिल इसी का विरोध करते हैं। किंतु चिंता की बात है कि संदर्भ से काट कर सिर्फ शब्दों पर प्रश्नकर्ताओं का विवेक ठहर जाता है, उन्हें भाव पकड़ने की फुरसत कहाँ? पर यहाँ सवाल उठता है कि क्या इस व्यावसायिक वृत्ति का असर 16-17 वर्ष आयु वर्ग के विद्यार्थी या उसके परिवेश पर नहीं होता है? शुद्धतावाद, आदर्शवाद शिक्षा तंत्र को कहाँ ले जाएगा? चिंता का विषय है इसी शुद्धतावाद और आदर्शवाद के चलते देश और समाज में भ्रष्टाचार की जड़े गहरी हो गई हैं। इसके बारे में गंभीरता से सोचा जाना चाहिए। धूमिल जनकवि हैं। और मोचीराम कविता उनके संग्रह 'संसंद से सड़क तक' से ली गई है। सड़क से संसद तक की बात वे नहीं करते हैं। धूमिल का मानना है कि इस देश और समाज में जिस परिवर्तन की जरूरत है वह ऊपर से नीचे की ओर होना चाहिए क्योंकि संसद सर्वोच्च है। सारे नियम-कानून वहीं बनते-बिगड़ते हैं। लागू करने -कराने की जिम्मेदारी भी उसी की है। और ऊपर से जो परिवर्तन होगा वह मान्य होगा, स्वीकार होगा। इसलिए बार-बार धूमिल संसद से सवाल करते हैं। 'रोटी और संसद' कविता में उन्होंने साफ-साफ कहा हे कि '' एक आदमी रोटी बेलता है/एक आदमी रोटी खाता है/एक तीसरा आदमी भी है/वह न रोटी बेलता है/न रोटी खाता है/वह सिर्फ रोटी से खेलता है/मैं पूछता हूँ.. यह तीसरा आदमी कौन है?/देश की संसद मौन है।'' बदले समय और परिस्थितियों में तीसरे आदमियों की संख्या दिनोदिन बढ़ती जा रही

है। इस पर कोई लगाम नहीं लगा पाता है। वही तीसरा आदमी विकास और विस्तार का माध्यम एवं माडल बना हुआ है। इसी तीसरे आदमी की वजह से रोटी बेलना और खाने वाले की भूमिका नदारद है। समाज में उसकी हैसियत नहीं, उसका कोई नाम लेवा नहीं। जबकि धूमिल का सारा संघर्ष इन्हीं दोनों वर्गों के लिए है, किंतु उन्होंने जिस तीसरे आदमी की पहचान की है वही सारा नाश पीट रहा है। यह सच कहने का साहस धूमिल ही कर सकते हैं? इसलिए तथाकथित सभ्य और सुसंस्कृत सामज को धूमिल पंसद कैसे हो सकते हैं? 'पटकथा' कविता में धूमिल ने कहा है-'' दुखी मत हो/यह मेरी नियति है/मैं हिंदुस्तान हूँ/जब भी मैंने उन्हें उजाले से जोड़ा है/उन्होंने मुझे इसी तरह अपमानित किया है/इसी तरह तोड़ा है।''

उजाले से जोड़ने वाले व्यक्ति को बार-बार अपमानित होना पड़ता है, धूमिल का सारा कवि कर्म उजाले से जोड़ने का प्रयास है। अंधेरे का साक्षात्कार करने वाला व्यक्ति ही उजाले से जोड़ने का प्रयास कर सकता है। टूटना और अपमानित होना उसकी नियति है। अगर उस कड़ी को आगे बढ़ाएँ तो मुक्तिबोध ने (अंधेरे में) अंधेरे का साक्षात्कार किया था (अंधेरे में टूटना और अपमानित होना तो उनकी भी नियति बन गई थी।) सभ्य और सुसंस्कृत समाज ने उन्हें इतना तोड़ा और अपमानित किया कि उन्हें विक्षिप्त करार दिया। जाहिर है अंधेरा पैदा करने वालों को धूमिल रास क्यों आएंगें? इसलिए तो उन्हें पाठ्यपुस्तक से हटाने तक की बात कर दी गई। दुर्भाग्य यह है कि उन्हें जिंदा रहते ही अपमानित किया गया, उन्हें तोड़ा गया किंतु मरणोपरांत लोगों ने पाठ्यपुस्तक से हटाने का अभियान छेड़कर उन्हें पुनः अपमानित किया है, तोड़ा है। जो लोग ऐसा कर रहे हैं दरअसल वे तीसरे आदमी की भूमिका का निर्वाह कर रहे हैं।

धूमिल तीसरे आदमी को बेपर्दा करते हैं। वही तीसरा आदमी व्यवस्था की जड़ में दीमक का काम कर रहा है। उस तीसरे आदमी की पहचान आवश्यक है? वही तीसरा आदमी बहुरूपिया है। कभी सत्ता की दलाली करता है तो कभी आपस में लड़ाता है। वह लूटमार, हत्या का बहुत बड़ा अपराधी सरगना एवं बिचौलिया है जिसे बड़े-बड़े बाहुबलियों का संरक्षण प्राप्त है। सही मायने में वह तीसरा आदमी ही षडयंत्र कर पाठ्यपुस्तक से धूमिल को हटाने की बात करता है। वही तीसरा आदमी शिक्षा जैसे क्षेत्रों में घुसपैठ कर उसे नष्ट करना चाहता है। इसलिए तीसरे आदमी की भूमिका संदेहास्पद है। इस तीसरे आदमी को जहाँ मौका मिले उसकी पहचान की जानी चाहिए,

धूमिल किसी सपने में नहीं बोल रहे हैं बल्कि जीवन यथार्थ और लोकजन्य पीड़ाओं की गहनतम अनुभूति के परिणामस्वरूप कहते हैं कि ''यहाँ न प्रजा है न तंत्र है/यहाँ आदमी के खिलाफ आदमी का खुला षडयंत्र है।'' धूमिल आम आदमी की बात करते हैं जिनके वोट का अपना महत्व है। जिनके बल पर लोकतंत्र बहाल है। आम आदमी की हालत लोकतंत्र में क्या बनी है? क्या इसीलिए स्वाधीनता प्राप्त की गई थी? क्या इसीलिए प्रजातंत्र का गठन किया गया जिसमें प्रजा की ही दुर्गति हो? धूमिल प्रश्न करते हैं–अपने यहाँ संसद तेल की वह घानी है/जिसमें आधा तेल है आधा पानी है'' और तर्क देते हैं कि ''अगर यह सच नहीं है/तो वहाँ एक ईमानदार आदमी को अपनी ईमानदारी का मलाल क्यों है?/ जिसने सच कह दिया /उसका बुरा हाल क्यों है?।''

जाहिर है छद्म लोकतंत्र के इस दौर में सत्य, ईमानदारी की दुर्गति की जा रही है। न्यायपालिका, कार्यपालिका, विधायिका की हालत क्या है? उससे सभी परिचित हैं। इंसान सब्जी से ज्यादा सस्ता हो गया है। वैसे दौर में धूमिल पर प्रश्न खड़ा करना, जाहिर है यर्थाथ से मुँह मोड़ना है। आखिर क्या कारण है कि धूमिल जैसा जीवंत कवि हाशिए पर धकेल दिया गया? युग को दिशा देने वाले कवि का आज कोई नामलेवा क्यों नहीं है? यह सवाल बड़े–बड़े आलोचकों, कवियों, साहित्यकारों को उनकी नैतिकता का आइना तो दिखाता ही है।

21 वीं सदी भोग और उपभोग की सदी है। जहाँ हम बाजारवाद की तीव्र गति से बढ़ रहे हैं वहीं विचार के स्तर पर हम कितने संकीर्ण होते जा रहे हैं अनुमान लगाया जा सकता है।

इसी पाठ्यपुस्तक में पांडेय बेचन शर्मा'उग्र' की आत्मकथा का अंश 'अपनी खबर' है, प्रश्नकर्ताओं ने इस पर भी आपत्ति की कि यह पाठ्यपुस्तक में पढ़ाने लायक नहीं है। इसे भी पाठ्यपुस्तक से हटाया जाना चाहिए। पाठ्यपुस्तक में क्या पढ़ाया जाना चाहिए क्या नहीं, पहले यही नीति बननी चाहिए। खुद तो अंधेरे में तीर मने वाले शिक्षा जगत में भी अंधेरा फैलाना चाहते हैं। उनके लिए भक्तिकाल अंधकार युग है, गांधी युग कोई रहा ही नहीं। काश ये उग्र जी को पढ़े होते, उग्र जी की उग्रता के बारे में जानते! उग्र जी इसी समाज की उपज हैं। इसी समाज में उन्होंने भी आँखें खोली और नजदीक से दुनिया का साक्षात्कार किया। अपनी खबर में उन्होंने लिखा है'' मेरे बड़े भाई साहब

जब जवान थे, तभी सनातन धर्म के भाग्य में, परिवार पद्धति के भाग्य में सर्वनाश की भूमिका लिखी हुई थी। एतएव जाने -अनजाने युग के साथ भाई साहब को भी इस सर्वनाश नाटक में अपने हाथ पाँव में कुल्हाड़ी मारने का उन्मक्त पार्ट अदा करना पड़ा। बहुत नजदीक थे, अत: भाई साहब का काम हमें अधिक दु:खदाई एवं बुरा लगा। लगा दुनिया में उन जैसा बुरा कोई था ही नहीं। लेकिन जरा ही ध्यान से देखने से पता चल जाएगा कि मेरे घर में जो हो रहा था वह अकेले मेरे ही घर का नहीं कमोवेश समाज के घर-घर का नाटक था।''

उग्र जिस समाज में पैदा हुए उस समाज के घर-घर का नाटक यही था। उग्र ने अपने बहाने समाज का साक्षात्कार किया है, अपने बहाने पूरे समाज को अभिव्यक्ति दी है। दुनिया को सभ्यता और संस्कृति का पाठ पढ़ाने वाला समाज उग्र जी के साथ क्या किया है, इसका जवाब कौन देगा? जिस दौर में उग्र के बड़े भाई जवान थे तभी जाने अनजाने उस युग में सनातन धर्म के भाग्य में, परिवार पद्धति के भाग्य में सर्वनाश की भूमिका लिखी हुई थी यानी सनातन धर्म सर्वनाश की ओर बढ़ रहा था। समय का चक्र चलता है। पूरी व्यवस्था में सनातन धर्म की भूमिका प्रमुख एवं महत्वपूर्ण होने के बाद वही धर्म काल का ग्रास बन रहा था। उग्र अपने समय के साथ युग को अभिव्यक्ति दे रहे थे। आत्मकथा लिखते समय जिस आत्ममंथन के दौर से उग्र को गुजरना पड़ा, सुसभ्य और सुसंस्कृत समाज वैसा आत्ममंथन क्यों नहीं करता? उग्र ताल ठोककर कहते हैं''भाई साहब का काम हमें अधिक दु:खदाई एवं बुरा लगा। लगा, दुनिया मे उन जैसा कोई बुरा था ही नहीं'' है किसी में साहस यह बयान देने का? जहाँ अपने परिजनों बेटे, बेटियों, भाइयों, भतीजियों को बचाने के लिए न्यायपालिका, कार्यपालिका, विधायिका तक को अपने पक्ष में, अपने प्रभाव में लेने का अभियान चल पड़ा हो उन्हें सत्ता और शक्ति के केंद्र में लाने के लिए, नौकरियों के लिए क्या-क्या नहीं किया जाता? कितने समझौते किए जाते हैं। लेकिन उग्र ने अकादमिक ईमानदारी के निर्वाह में कोई कसर नहीं छोड़ा। हालाँकि उन्हीं दौर के कवि धूमिल का कहना है- ''इससे पहले कि ईमानदारी तुम्हें ऐसी जगह ले जाए/जहाँ बेटा बाप कहने में शरमाए/वापस लौट आओ''कितना कठिन दौर था, कल्पना कीजिए। उस दौर में उग्र जी अपनी खबर ले रहे थे। सही मायने में उन्होंने अकादमिक ईमानदारी का परिचय दिया, किंतु आज का समाज बौद्धिक दिवालिएपन से गुजर रहे दौर में उग्र को नहीं देखना चाहता। चाहते

तो उग्र आज के बुद्धिजीवियों या अपने अन्य समकालीनों की तरह बौद्धिक जुगाली से अपना काम चला सकते थे। इस नंगे यथार्थ को समाज के सामने न भी लाते तो कुछ नहीं बिगड़ता, किंतु उन्होंने अपने माध्यम से, अपनी खबर के माध्यम से युग-सत्य का उद्घाटन किया है- ''हम लोगों की जजमानी यूँ ही जयसीताराम थी। कहिए कि हम शानदार भिखारी थे। भिखारी सड़क पर कपड़े फैला या गलियों में हाथ पसारकर भीख मांगता है, लेकिन हमें गरीब और ब्राह्मण जानकर जाने पहचाने लोग हमारे घर भीख पहुँचा जाते थे। यह भीख भी शानदार थी। तब तक जब तक ब्राह्मणों के घर ब्राह्मण पैदा होते थे। लेकिन जब ब्राह्मणों के घर में ब्रह्मराक्षस पैदा होने लगे तब तो यह जजमानीवृत्ति नितांत कमीना धंधा-स्वयं नीचातिनीच होकर भी दूसरों से चरण पुजवाना रह गई थी।... तभी तथाकथित सनातन धर्म के नाश का आरंभ उसी के अनुगामियों-धर्म के ठेकेदार ब्राह्मणों द्वारा हो चुका था... जिस जेनेरेशन में मेरे बड़े भाई साहब पैदा हुए थे उसका विश्वास धर्म से उठ रहा था। मुहल्ले के हरेक घर में एक न एक ऐसा जवान पैदा हो चुका था जो पुरानी मर्यादाओं और धर्म को ताक पर रखकर उच्छृंखल आचरण में रत रहा करता था।''

सनातन धर्म का विनाश उनके लिए व्यक्तिगत पीड़ा नहीं सामाजिक पीड़ा थी, युग की पीड़ा थी। मूल्य, नैतिकता, चारित्रिक पतन आदि उसी का परिणाम है। धर्म तब तक मजबूत था जब तब लोगों की उसमें आस्था थी, विश्वास था। लोग अपनी प्रतिबद्धता, अपनी जिम्मेदारी समझते थे। अच्छे-बुरे, आचार-विचार का भेद था। धर्म ब्राह्मण समाज से परिभाषित होता था। उनके आचार-विचार समाज के लिए अनुकरणीय बना हुआ था। स्वयं ब्राह्मण समाज में पूज्य थे। ब्राह्मण समाज में ही सनातन धर्म के प्रति अनास्था, अविश्वास, मूल्य-नैतिकता या चारित्रिक पतन ने उस धर्म की जड़ें हिला दी। ब्राह्मण समाज में इन कुप्रवृत्तियों के आते ही बाकी समाज धर्म के प्रति उदासीन हो गया। उनका मानना है कि धर्म के ठेकेदार ब्राह्मणों द्वारा सनातन धर्म का नाश हुआ है। वह भी तब से जब से ब्राह्मणों के घर ब्रह्मराक्षस पैदा होने लगे। इसीलिए जजमानी वृत्ति उन्हें नितांत कमीना धंधा स्वयं नीचातिनीच होकर भी दूसरों से चरण पुजवाना रह गई थी। यह उस समय का युग सत्य है जिसका नजदीक से साक्षात्कार किया है उग्र ने। धूमिल के शब्दों में कहे तो ''कैसे आदमी हो/अपनी जाति पर थूकते हो।'' उग्र जिस जाति में पैदा हुए थे उसी के प्रति इतने कटु, इतने निर्मम,

आखिर क्यों? अगर धूमिल के शब्दों में कहें तो ''आग सबको जलाती है/सच्चाई सबसे होकर गुजरती है।'' उसी सच्चाई का सामना किया है उग्र ने। उग्रजी का युगबोध उन पर हावी है क्योंकि उसी सच्चाई से होकर वे गुजरें हैं। उग्र और धूमिल ही नहीं छायावाद में यही काम निराला ने भी किया है। उन्होंने भी अपने युग को अभिव्यक्ति दी है। स्वयं अपने ही कुल की मर्यादा का तोड़ा है। यहां यह कहना गलत नहीं होगा कि मर्यादा तोड़ना उनका उद्देश्य नहीं था। उद्देश्य था युग सत्य को अभिव्यक्ति देना। निराला ने कहा है-''कान्यकुब्ज कुलकुलांगार/खाकर पत्तल में करे छेद/इनके कर कन्या अर्थ खेद/इस विषय बेलि में विष ही फल/यह दग्ध मरूस्थल-नहीं सुजल''वह रचनाकार क्या जो अपने समय के युग सत्य का साक्षात्कार न करे? इसमें दो राय नहीं कि उग्रजी ने उसका प्रत्यक्ष साक्षात्कार किया और अपनी संवेदना को इतना लोक संपृक्त बनाया कि उनका व्यक्ति सत्य वस्तु सत्य बनकर युग सत्य में बदल गया। वे कहते हैं-''मैं नि:संकोच शूद्र हूँ ब्राह्मण- ब्राह्मणी से मुझे शूद्र-शूद्राणी अधिक आकर्षक अपने अंग के मालूम पड़ते हैं। यहाँ तक कि आज भी मैं खानाबदोशों, बंजारों, जिप्सियों की गंदगी, जवानी, जादू और मूर्खता से भरा गिरोह देखता हूँ तब मेरा मन करता है कि ललककर उन्हीं में लीन हो जाऊँ, विलीन।''

आखिर उग्र को वह जीवन पसंद क्यों नहीं आया जो सभ्य और सुसंस्कृत लोगों का होता है। यह उग्र का आत्म विलाप है। ब्राह्मण कुल में पैदा होने पर भी वह श्रेष्ठता, गौरव, आत्माभिमान जीवन भर उन्हें नसीब नहीं हुआ। उनका ज्ञानात्मक संवेदन और संवेदानात्मक ज्ञान जिस वर्ग, समाज के प्रति था उन्हीं जैसा जीवन का राग-रंग तथा जीवन शैली प्रिय थी जिसको उन्होंने जिया उसी को पाना चाहा। जिसको न देखा, न जिया उसकी इच्छा होती भी तो कैसे? वे कहते हैं'' नरक लाख बुरा-बदनाम हो, लेकिन अपना तो जीवन-संगी बन चुका है, सहज हो गया है, रास आ गया है।'' इसीलिए वे ललककर उन्हीं में लीन-विलीन होना चाहते हैं।

उग्र की यह जीवन शैली, सोच विचार या जाति तोड़क प्रयास अगर सभ्य और सुसंस्कृत समाज को रास नहीं आएगा तो जाहिर है उन्हें विरोध तो झेलना ही पड़ेगा। उन पर प्रश्न खड़ा करना-कराना, संसद में हंगामा कराना, पाठ्यपुस्तकों से हटवाना विरोध का ही परिणाम है किंतु प्रश्न उठ सकता है कि सुविधाजीवी समाज, तथाकथित सभ्य

और सुसंस्कृत (ब्राह्मण) समाज उग्र जैसे लोगों को क्यों नहीं अपना सका? क्या कारण है कि उग्र की जहालत या जलालत या जलालतभरी जिंदगी को वह पहचान न उनके तथाकथित समाज से मिली न गैर समाज से। ऐसी स्थिति में क्या समाज जिम्मेदार नहीं है? इसका जवाब कौन देगा?

उग्र लिखते है''चुनार में अकसर चूहे डंड ही पेला करते थे या जजमानी से भिक्षा मिल जाती थी या मेरी आई किसी की मजूरी कर कूट-पीसकर लाती थी। बड़ी मुश्किलों से सुबह का खाना मिलता तो शाम को नहीं, शाम को मिलता तो सवेरे नहीं। '' ब्राह्मण समाज में उग्र जैसे एक नहीं अनेक परिवार हैं उसके बारे में क्या सभ्य और सुसंस्कृत समाज ने कभी सोचा है? उन्हें किस आरक्षण वर्ग में रखेंगे आप? सवाल उठता है कि गरीबी की कोई जाति होती है क्या? और पांडेय वेचन शर्मा 'उग्र' जैसा लेखक इतने संघर्षों और रचनाकार्मों के बाद हाशिए पर क्यों धकेल दिया गया? क्या तथाकथित सभ्य और सुसंस्कृत (ब्राह्मण) समाज इसके लिए जिम्मेदार नहीं है? भाषा और साहित्य के क्षेत्र में दलगत खेमेबंदी ने उग्र, धूमिल जैसे अनेक महत्वपूर्ण रचनाकारों को कब्र में दफन कर दिया। यह खेमेबंदी आलोचक, कवि,साहित्यकारों की रही है। आज तो उसका वीभत्स रूप देखा जा सकता है। जिन साहित्यकारों, कवियों ने युग को दिशा देने का काम किया है उनका यह हस्र है तो शेष साहित्यकार और समाज क क्या हाल होगा? आज हम उन्हीं से परहेज करने लगे हैं,उन्हें ही पाठ्यपुस्तक से बाहर करने पर आमादा हैं।

हिंदी साहित्य में कबीर, तुलसी, निराला, प्रेमचंद मुक्तिबोध, धूमिल, उग्र, नागार्जुन आदि ढेरों नाम हैं, इनमें किसको पढ़ाया जाए, किसको छोड़ा जाए, किसे पाठ्यपुस्तक में रखा जाए किसे पाठ्यपुस्तक से निकाल बाहर किया जाए। यह कौन तय करेगा? दुर्भाग्य या सौभाग्य जो भी कहिए ये तीनों रचनाकार पहले इन्हीं पाठ्यपुस्तकों में पढ़ाए जाते रहे हैं। कभी किसी तरह का भ्रम नहीं फैलाया गया, किसी तरह की आपत्ति दर्ज नहीं की गई। अब 21वीं सदी में हम बाजारवाद, उदारवाद, उपभोक्तावाद तथा सूचना क्रांति के युग में प्रवेश कर गए हैं। मीडिया अपनी चमत्कारिक भूमिका में है। शिक्षा की दुनिया में बहुआयामी परिवर्तन हो रहे हैं। शोध और अनुसंधानों ने अनेक द्वार खोले हैं। शिक्षा के क्षेत्र में प्रौद्योगिकी की भूमिका अहम होती जा रही है। जहाँ ये सब हो रहा है,

वहाँ हमारी सोच का दायरा तंग होता जा रहा है, हम संकीर्ण एवं संकुचित होते जा रहे हैं– इन विवादों से तो यही समझ में आ रहा है। हम कैसे समय और समाज में जी रहे हैं? हम किस तरह का समाज बनाना चाहते हैं? हम कैसी शिक्षा देना चाहते हं? यानि हमारी मंशा क्या है और हम क्या करना चाहते हैं?

हिंदी पाठ्यपुस्तकों का निर्माण भाषा शिक्षण के सिद्धांतों तथा साहित्य के सामाजिक–सांस्कृतिक सरोकारों को ध्यान में रखते हुए सतत् शोध अध्ययनों के आधार पर किया जाना चाहिए। हमें इन मामलों से पेशेवर तरीके से निपटना होगा वरना मौजूदा तथाकथित राजनीतिक खेलों से शिक्षा जगत तबाह हो जाएगा।

ISSN 0972-7515

आगामी अंक में

आलेख

गेसू आर. अरविंद और संजय शर्मा
शिक्षा, सामाजिक गतिशीलता एवं दलित : अंतर्सम्बंधों की पड़ताल

हरेश पाण्डेय
गैट्स समझौता और भारत में उच्च शिक्षा

सुषमा पाण्डेय और ओम प्रकाश सिंह
दूर शिक्षा माध्यम से विज्ञान विषयों का गुणात्मक शिक्षण

महेन्द्र सिंह
हरियाणा में उच्च शिक्षा का विकास : ऐतिहासिक व राष्ट्रीय संदर्भ में वर्तमान परिदृश्य

शोध टिप्पणी / संवाद

अजय कुमार सिंह
भारत में समावेशित शिक्षा का स्वरूप

श्वेता अग्रवाल और शालिनी दीक्षित
विद्यार्थियों पर नैराश्य प्रतिक्रियाओं एवं शैक्षिक उपलब्धि का प्रभाव

कुमुद त्रिपाठी
घरेलू हिंसा के बारे में अध्यापिकाओं के दृष्टिकोण और महिला संरक्षण नियम का प्रभाव

अन्य स्थाई स्तंभ